ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 14 फरवरी 2016 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 14 फरवरी 2016 से 20 फरवरी 2016

मा.शु. –07● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 59, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. जयपुर में लगा नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर

राजस्थान के डी ए वी शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों के लिए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा व आर्य युवा समाज, राजस्थान के संयुक्त तत्वाधान में डी ए वी पब्लिक स्कूल, वैशाली नगर, जयपुर में द्विदिवसीय नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया। इस द्वि दिसवीय नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर में जयपुर, अजमेर व बहरोड़ में स्थित डी ए वी शिक्षण संस्थाओं के लगभग 252 शिक्षकों ने भाग लिया।

शिविर का शुभारम्भ यज्ञ के द्वारा हुआ। इस यज्ञ के सपत्नीक मुख्य यजमान के आसन को अलंकृत किया डी. ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति व आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के प्रधान डॉ. पूनम सूरी जी ने यज्ञोपरान्त मुख्य यजमान डॉ.पूनम सूरी जी ने यज्ञ में सम्मिलित सभी जनों पर पुष्प –वर्षा कर शुभाशीष प्रदान की। विद्वज्जनों ने मुख्य यजमान दम्पती पर पुष्पवर्षा कर मंगल कामनाएं कीं।

नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर के उद्घाटन व प्रथम सत्र का शुभारम्भ माननीय प्रधान सर्वश्री डॉ. पूनम सूरी जी ने वैदिक मन्त्रोच्चारण के मध्य दीप प्रज्ज्वलित कर किया।

श्री एस के शर्मा जी ने शिविर की पृष्ठभूमि व उद्देश्य का उल्लेख किया। डॉ. पूनम सूरी जी का दिव्य व सारगर्भित वक्तव्य के लिए विनम्र आह्वान किया। मान्यवर मुख्य अतिथि महोदय ने अपने उद्बोधन में कहा कि आने वाले समय में डी ए वी के शिक्षक भारत की चतुर्दिक् उन्नति में प्रमुख भूमिका निभाएंगे क्योंकि कारपॉरेट जगत् भी डी ए वी शिक्षण संस्थान पर गहरा विश्वास करता है। उन्होंने सभी वर्गों का आह्वान करते हुए कहा कि सभी समुदायों को समवैचारिक कार्ययोजनाओं पर सहमति स्थापित करनी चाहिए। जन सामान्य में देशभक्ति व प्रभुभक्ति के अभाव को दुर्भाग्य बताते हुए अथर्ववेद के उद्धरण से देशरक्षा के सत्य व उदारता आदि आठ गुणों का वर्णन अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया और अन्त में शिक्षक के आचार्यरूप को मुखरित करते हुए सदाचरण से अपने जीवन में गुरुत्वाकर्षण उत्पन्न करने का मन्त्र प्रदान किया।

द्वितीय सत्र के मुख्य वक्ता डॉ. वागीश कुमार शर्मा द्वारा "डी ए वी के शिक्षक और नैतिकता!" विषय पर मार्मिक प्रवचन हुआ। अपने प्रवचन में विद्वान् आचार्य जी ने बताया कि सत्य का अन्वेषण–विज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान का अन्वेषण दर्शन एवं इनकी अभिव्यक्ति ही कला है। परिवार व समाज के प्रति उदासीनता को दु:खों का प्रमुख कारण बताते हुए आचार्य वागीश कुमार शर्मा ने कहा कि परिवार व समाज के साथ जुड़ाव से व्यक्ति के सुखों में धनात्मक वृद्धि होती है और दु:खों में न्यूनता आती है। प्रवचन के पश्चात् उपस्थित प्रतिभागियों ने प्रश्नों के माध्यम से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान किया।

द्वितीय दिवस यज्ञ के मुख्य यजमान के आसन को सपत्नीक सुशोभित किया आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, राजस्थान के प्रधान प्राचार्य श्री अशोक कुमार शर्मा ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के सहमन्त्री श्री सत्यपाल आर्य, डॉ. वी सिंह जी, निदेशक, पब्लिक स्कूल, डी. ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली, एवं राजस्थान के क्षेत्रीय निदेशक प्राचार्य तथा शिविरार्थी भी उपस्थित रहे।

द्वितीय दिवस ने प्रथम सत्र में साध्वी डॉ. उत्तमा यति ने मानवीय नैतिक आचरण का उल्लेख करते हुए कहा कि मानव जीवन की सार्थकता परोपकार में निहित है।

दूसरे सत्र के मुख्य वक्ता थे–श्री सोमदेव आचार्य। "ईश्वर, जीव और जगत्" उनके वक्तव्य का विषय था। वैदिक त्रैतवाद पर सारगर्भित प्रवचन देते हुए उन्होंने कहा कि संशयात्मक, भ्रमात्मक व निश्चयात्मक भेद ज्ञान तीन प्रकार का होता है, इनमें से निश्चयात्मक ज्ञान ही कल्याणकृत होता है। यजुर्वेद के 40 वें अध्याय में स्थित मन्त्र "सपर्यगाच्छुकमकायम्......" के द्वारा ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए आचार्य जी ने जीव के इच्छा, द्वेष, सुख, दु:खादि गुण तथा प्रकृति के स्वरूप को उपस्थित किया। प्रतिभागियों ने ईश्वर और उसके स्वरूप व उपासना पद्धति को लेकर अनेक शंकाएं प्रस्तुत कीं, जिनका आचार्य जी ने प्रामाणिक समाधान किया।

तृतीय में मुख्य वक्ता आचार्य श्री सत्यजित् जी ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक "आर्य समाज और कर्मफल सिद्धान्त" जैसे दार्शनिक विषय पर अपना वक्तव्य देते हुए बताया कि कृत, कारित व अनुमोदित कर्म कर्म–फल व्यवस्था के स्तम्भ हैं, जो क्रियमाण, संचित व प्रारब्ध भेद से तीन प्रकार के होते हैं। कर्म–फल व्यवस्था से सम्बन्धित प्रतिभागियों द्वारा प्रस्तुत अनेकानेक शंकाओं का समाधान आचार्य महोदय ने अत्यन्त तर्कसम्मत ढंग से किया।

विद्वानों, प्रतिभागियों एवं मुख्य अतिथिवृन्द के कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद के साथ इस भव्य कार्यकाला का सफल समापन हुआ। अन्त में सभी प्रतिभागिओं को ऋषि दयानन्द प्रणीत आर्योद्देश्य रत्नमाला, व्यवहारभानु के साथ ही आचार्य सत्यजित जी व आचार्य सोमदेव द्वारा लिखित साहित्य व आर्य सत्संग गुटका स्वाध्यायार्थ उपहार स्वरूप प्रदान किया गया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 14 फरवरी, 2016 से 20 फरवरी, 2016

हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो, महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयाऽदन्, रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्।।

ऋग् १०.४.४

ऋषिः **त्रितः आप्त्यः।** देवता **अग्निः।** छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● (**अङ्ग**) हे, (**अमूर**) अमूढ़, (**चिकित्वः**) ज्ञानी, (**अग्ने**) परमेश्वर!, (**मूराः**) मूढ़, (**वयं**) हम, (**महित्वं**) महत्ता को, (**न**) नहीं [जान पाते]।, (**त्वं**) तू, (**वित्से**) जानता है। [हमारा], (**वव्रिः**) रूपवान् आत्मा, (**शये**) सोया पड़ा है, (**जिह्वया**) जिह्वा [आदि इन्द्रियों] से, (**अदन्**) भोग करता हुआ, (**चरति**) विचरता है, (**विश्पतिः सन्**) राजा होता हुआ [भी], (**युवतिं**) प्रकृति–रूप युवति को, (**रेरिह्यते**) अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है।

● हे अग्ने! हे तेजोमय ज्ञानी प्रभु! हम मूढ़ हैं, तुम अमूढ़ हो। हम तो यह भी नहीं जानते कि 'महत्ता' किसका नाम है, महत्त्व प्राप्त करना किसे कहते हैं। हम तो समझते हैं कि सांसारिक दृष्टि से महिमाशाली होना, हाथी, घोड़े, रथ, सेवक आदि का स्वामी हो जाना ही महत्ता है। हमारा तो विचार है कि नचिकेता को यम ने जिस सांसारिक धन–दौलत, पुत्र–पौत्र, भूमि के राज्य आदि सम्पत्ति के प्रलोभन में फँसाना चाहा था, उस सम्पत्ति को पा लेना ही महत्ता है। पर हम मूढ़ अज्ञानियों के ऊपर रहनेवाले अमूढ़ ज्ञानी तुम जानते हो कि सच्ची 'महत्ता' क्या है।

हमारा रूपवान् आत्मा सोया पड़ा है, उसे यही चेतना नहीं है कि मैं किसलिए इस शरीर में आया हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है मुझे किधर जाना है। वह जिह्वा आदि इन्द्रियों से निरन्तर भोगों को भोगने में आसक्त हुआ विचर रहा है और इस भोग भोगने में ही अपने जीवन की इतिश्री मान बैठा है। भगवान् ने उसे 'विश्पति' बनाया है, शरीर–नगरी का राजा बनााया हैं, जिसमें मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि अनेक प्रजाएँ निवास करती हैं। उसे इस शरीर–नगरी को ईश्वरीय साम्राज्य बनाना चाहिए था, अध्यात्म–साधना द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र बनाना चाहिए था। शरीर–राष्ट्र को भोगों से जर्जर न कर सबल, सप्राण और समनस्क करना चाहिए था। पर धिक्कार है इस आत्मा को! यह तो एक 'युवति' को चाट रहा है, अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है। प्रकृति ही यह युवति है जो नटी बनकर आत्मा को अपने साथ नचा रही है, भोग भुगा रही है। आत्मा प्रकृति को चाट रहा है, प्रकृति आत्मा को चाट रही है। इस प्रकार आत्मा लौकिक भोग–विलासों में आनन्द ले रहा है।

हे मेरे आत्मन्! इस मूढ़ता को त्यागो, अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जगाओ, 'सच्ची महत्ता क्या है' इसे जानो, सोते से उठ खड़े हो, इन्द्रियों के वशीवर्ती न हो, अपितु इन्द्रियों के स्वामी बनो। प्रकृति को न चाटकर परम प्रभु के अमृत–रस का आस्वादन करो। तुम्हारा उद्धार होगा, तुम महिमाशाली बन जाओगे। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु - भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी के अनुसार सांसारिक भोगों के भोगने से कोई रोकता नहीं है, न ही कोई यह कहता है कि सब कुछ छोड़कर अकर्मण्य हो जाओ, गार्हस्थ आश्रम त्यागकर किसी वन में जा बैठो।

उतना धन कमाईये, जितना धर्म तथा न्याय से कमा सकते हैं। पाप से धनोपार्जन न कीजिए और दूसरों का अधिकार छीनकार मत समझिए कि आप सुखी हो सकेंगे। पाप करने वाले को इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि वह दूसरों को धोखा देकर स्वंय ही बचा रहेगा।

सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर (अर्थात इन्द्रियों को विषय से हटाकर) तथा मन को हृद्देश में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके, योगधारण में स्थित हुआ, जो पुरुष ओ३म् इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसी का चिन्तन करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह पुरूष परमगति को प्राप्त होता है।

अब आगे....

भगवान् का मन्दिर
ज्यूँ तिल माहीं तेल है,
ज्यूँ चकमक में आग।
तेरा प्रभु तुझमें बसे,
जाग सके तो जाग।।

यह तो भगवान् का मन्दिर है। पता नहीं इसे मनुष्य–शरीर का नाम क्यों दिया गया है। यही वह स्थान है, जहाँ सचमुच परमात्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। निस्सन्देह, परमात्मा सर्वव्यापक है। संसार के अणु–अणु में वह उसी प्रकार रमा हुआ है, जैसे हर वस्तु में अग्नि विद्यमान है। अग्नि का किसी भी स्थान पर आह्वान कीजिये, उसे प्रकट करने के साधन एकत्रित कीजिये, वह प्रकट हो जायेगा। परन्तु परमात्मा हर स्थान और हर वस्तु में होते हुए भी हर जगह दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। उसके दर्शन केवल इस मन्दिर में ही हो सकते हैं। इसका कारण यह है कि परमात्मा को देखनेवाला नेत्र केवल इस मन्दिर के ही भीतर खुलता है। परमात्मा और जीवात्मा का मिलाप यहीं भली–भाँति होता है। यहीं होता है संगम इन दोनों का। यही है वह मन्दिर, जिसके सब बाह्य द्वार बन्द कर जब मन भीतर बैठ एकाग्र और निर्विषय हो जाता है, तब वह प्रकाश स्वयमेव प्रकट हो जाता है, जिसे देखने की उत्कण्ठा तथा लालसा आत्मा को इस बन्दी शरीर में ले आती है। इस ज्योति को देखने से कैसा आनन्द प्राप्त होता है–इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह तो वह स्वाद है, जिसे स्वयं ही अनुभव किया जा सकता है। किसी के बतलाने का न यह विषय है और न बतलाया ही जा सकता है।

ऋषि वास्कलि एक बार योगेश्वर श्री वाधव के योगाश्रम में पहुँचे और प्रार्थना की–"भगवन्! सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप आपने देखा है, उसका वर्णन कीजिये कि वह स्वरूप कैसा है?"

वाधव महाराज चुपचाप बैठे रहे, कुछ बोले नहीं। थोड़ी देर बाद ऋषि वास्कलि ने फिर वही प्रश्न किया। अब भी वे चुप्पी ही साधे रहे। तीसरी, चौथी बार भी यही प्रश्न किया और उत्तर भी वही मौन ही मिला। बार–बार एक ही प्रश्न दोहराते हुए जब वास्कलि ऋषि उकता गये तो कहने लगे–"मेरी जिज्ञासा का उत्तर देकर मेरे तप्त–हृदय को आप शान्त क्यों नहीं करते?" तब योगेश्वर वाधव कुछ मुस्कराकर बोले–"अरे वास्कले! तेरे प्रश्नों का उत्तर तो साथ ही साथ तत्काल देता रहा हूँ। यदि समझ में न आये तो इसमें मेरा क्या दोष? भाई! स्वरूप कोई वाणी से बतलानेवाली वस्तु नहीं। यहाँ तो सब वाणियाँ पहुँचकर मौन साध लेती हैं और जब लौटकर आती हैं तो कुछ बोलने में असमर्थ होती हैं। इस 'गूँगे के गुड़' का स्वाद कैसे बतलाया जाये? और निश्चय ही यह स्वाद इस मन्दिर ही में मिलता है, संसार की और किसी वस्तु में नहीं!"

छान्दोग्य–उपनिषद् के अन्तिम प्रपाठक के आरम्भ में 'ब्रह्मपुर' का वर्णन किया है। ब्रह्म तो सर्वत्र है और सर्वव्यापक है, फिर उसकी कोई पुरी कैसे हो सकती है? हाँ, यह मनुष्य–शरीर ही उसकी नगरी है, इसी में ब्रह्म को पहचाननेवाला रहता है। छान्दोग्य के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये, ऋषि कहता है–

यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुरण्डीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः।
तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति।।

"यह जो ब्रह्मपुर (शरीर) है इसमें एक छोटा–सा (हृदय) कमल का मन्दिर है, इस

मन्दिर के पीछे एक छोटा–सा आकाश है। इस आकाश के भीतर जो कुछ है, उसका अन्वेषण करना चाहिए, उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए।" यही 'कमल का मन्दिर' भक्त और भगवान् का मिलन–स्थान है और वह इसी ब्रह्मपुर या शरीर के ही अन्दर है, इसी स्थान पर उसकी खोज करनी होती है। इसी स्थान का नाम वह 'गुहा' है, जिसके सम्बन्ध में यजुर्वेद कहता है कि **'वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा'** अर्थात् ज्ञानी पुरुष उस सत् ब्रह्म को हृदय की गुहा में निहित देखता है। यही बात अथर्ववेद के दूसरे कांड के पहले ही मन्त्र में कही है–

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।।

"योगी उसे परमगुहा में देखता है। यहाँ सारा विश्व एकरूप हो जाता है, अर्थात् भक्त के लिए फिर प्रभु के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु देखने योग्य नहीं रहती।" यही है वह ब्रह्मपुर, जिसका उल्लेख मुण्डक–उपनिषद् में इन शब्दों में किया गया है–

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यात्र महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।

"जो सबको जानता है और सबको समझता है, जिसकी इस भूमि पर (प्रत्यक्ष) महिमा है, वह आत्मा दिव्य ब्रह्मपुर (हृदय) हृदयाकाश में रहता है।"

स्वर्ग भी इसी को कहा जाता है। स्वर्ग संसार का कोई विशेष स्थान नहीं है अपितु इस? शरीर के अन्दर ही वह स्वर्ग विद्यमान है।

वेद भगवान् ने तो स्वर्ग का बहुत ही सुन्दर और विस्तृत विवरण दिया है–

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः।।

"यह देवताओं का दुर्ग, जिसके आठ चक्र और नौ द्वार हैं और जिसको जीतना दुष्कर है, उसमें ज्योति से भरपूर स्वर्ग है और उसी में सुनहरी कोश है। यह आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली अयोध्या नगरी है।" यह यूरोप, अफ्रीका, एशिया, भारत अथवा अन्तरिक्ष लोक या द्युलोक में तो कहीं दिखाई नहीं देती, अपितु यह नगरी हर देश, हर ग्राम और हर घर के अन्दर देखी जा सकता है। वह है मनुष्य–शरीर। मनुष्य –शरीर ही में नौ द्वार हैं–दो नेत्र, दो नासिकाएँ, दो कान, एक मुख, दो मल–मूत्र त्यागने के स्थान–ये नौ द्वार इस नगरी के स्पष्ट दिखाई देते हैं। और आठ चक्र–वे इसी शरीर में हैं। हठयोग के विद्वानों का कथन है कि इस शरीर में निम्न आठ चक्र हैं। इनके द्वारा प्राण ऊपर चढ़ता हुआ ब्रह्म–द्वार में प्रवेश कर सकता है–

1.मूलाधार चक्र
2.स्वाधिष्ठान चक्र
3.मणिपूरक चक्र
4.अनाहत चक्र
5.हृदय चक्र
6.विशुद्ध चक्र
7.आज्ञा चक्र
8.ब्रह्म चक्र

पहला चक्र गुदा स्थान पर है, दूसरा पेडू में, तीसरा नाभि में, चौथा हृदय के निकट, पाँचवाँ हृदय के अन्दर, छठा कण्ठ में, सातवाँ भ्रू–मध्य में और आठवाँ शिखा के नीचे।

जब ब्रह्म के दर्शन करने होते हैं तो इस नगरी के बाहर के सब द्वार बन्द करके इन आठ चक्रों में से होकर स्वर्ग के अन्दर पहुँचना होता है। तब वहाँ ज्योति दिखाई देती है और वहीं अपने परमप्रिय का दर्शन होता है।

मन्दिर की सफ़ाई–

वेद भगवान् तथा उपनिषद् ने जब बतला दिया कि मनुष्य का शरीर ही भगवान् का मन्दिर है, फिर किसी आस्तिक को इसमें सन्देह नहीं रह जाता और निश्चय ही मैं यह निवेदन केवल आस्तिक भक्तों के ही सम्मुख रख रहा हूँ। भगवान् के इस मन्दिर में पूजा और भक्ति के लिए जाने से पूर्व अत्यन्त आवश्यक है कि मन्दिर की सफ़ाई की जाये। पूजा–पाठ का स्थान स्वच्छ ही होना चाहिए। सफ़ाई दो प्रकार की है बाह्य और भीतरी। बाह्य सफ़ाई स्वच्छ जल इत्यादि से हो जाती है, परन्तु भीतरी सफाई के लिए प्रयत्न करना होता है। उसके कुछ नियम ये हैं–

प्रातः 4 बजे बिस्तर से अवश्य उठ जाने का नियम बना लेना चाहिए, और फिर शौच आदि से निवृत्त होकर दाँत साफ़ करने चाहिएँ। फिर व्यायाम, आसन इत्यादि करने चाहिए जिससे शरीर बिल्कुल थक तो न जाये, परन्तु इसके प्रत्येक अंग में स्फूर्ति अवश्य आ जाए। फिर स्नान करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो स्नान के पश्चात् व्यायाम करने का नियम बनाया जा सकता है। पेट की सफ़ाई की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि वैसे पेट भली–भाँति साफ़ न हो तो भोजन में ऐसा परिवर्तन कर देना चाहिए, जिससे पेट साफ़ हो जाये। जिनका पेट ठीक तरह साफ़ नहीं होता उनको हाथ की चक्की से पिसे हुए मोटे आटे की रोटी खानी चाहिए। हरी तरकारियों का प्रयोग अधिक करना चाहिए, दूध अधिक पीना चाहिए और घी में भुनी हुई हरीतकी (हरड़) का सेवन करना चाहिए। जिनका पेट इन वस्तुओं से भी साफ़ न हो, वे फिर महीने में एक–दो बार वस्ति (अनीमा) कर लिया करें।

शेष अगले अंक में....

पीड़ितों की सेवा मनुष्य का धर्म

● **मनमोहन कुमार आर्य**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके चारों ओर अपने निकट सम्बन्धी और पड़ोसियों के साथ मित्र व पशु–पक्षी आदि का समुदाय दृष्टिगोचर होता है। समाज में सभी मनुष्यों की शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य की स्थिति व आर्थिक स्थिति समान नहीं होती है। इनमें अन्तर हुआ करता है। यह सम्भव है कि एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं होने के साथ शारीरिक दृष्टि से भी स्वस्थ हो, शिक्षित व प्रतिष्ठित भी हो परन्तु ऐसा भी सम्भव है कि एक व्यक्ति निर्धन, अशिक्षित व अस्वस्थ या रोगी हो। ऐसी स्थिति में सम्पन्न व्यक्ति का क्या यह कर्तव्य नहीं बनता कि वह समाज के निर्बल लोगों की आर्थिक सहायता व सेवा करे? स्वस्थ युवा व धनी मानी लोगों का कर्त्तव्य है कि वे समाज के अस्वस्थ व निर्धन लोगों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप यथासम्भव सेवा व आर्थिक सहायता करें जिससे कि वह अपना जीवन सामान्य रूप से व्यतीत कर सकें और समाज के निर्बल वर्ग की भी शारीरिक, बौद्धिक व आत्मिक उन्नति हो सके।

आइये, कुछ चर्चा धर्म की करते हैं। धर्म की अनेक परिभाषायें की जाती हैं जिनमें से एक है कि सभी मनुष्यों अपने जीवन में शुभ गुणों को धारण करना चाहिये। ये शुभ गुण व कर्म क्या हो सकते हैं? व्यक्तिगत गुणों में तो मनुष्य को अपने स्वास्थ्य को अनुकरणीय बनाने के लिए आहार, निद्रा, संयम व व्यायाम आदि के नियमों का पालन करना चाहिये। विद्यालयी व व्यवसायिक शिक्षा व ज्ञान के साथ सामाजिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान में भी पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। शुभ गुणों की चर्चा आने पर पहला गुण तो यह है कि उसे सत्य व धर्म का आचरण करना चाहिये। प्राचीन वैदिक शिक्षा में जब ब्रह्मचारी शिक्षा समाप्त कर गुरुकुल से लौटता था तो दीक्षान्त भाषण में उसका आचार्य जो शिक्षायें देता था उनमें पहली शिक्षा **"सत्यं वद्, धर्मं चर तथा स्वाध्यायां मा प्रमदः"** होती थी। आज भी इन शिक्षाओं का महत्व निर्विवाद है। 'सत्यं वद' में हम कह सकते हैं कि मनुष्य के मन, मस्तिष्क व आत्मा में जो ज्ञान है, उसी के अनुरूप उसे व्यवहार करना चाहिये अर्थात् मन, वचन व कर्म में एकता होनी चाहिये। ऐसा नहीं होना चाहिये कि उसका आचरण उसके मन व आत्मा में निहित विचारों के प्रतिकूल हो। मन के ज्ञान के अनुसार ही वचन को बोलना व कर्मों का करना वास्तविक वा यथार्थ धर्म है। नियमित सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करने से मनुष्य के बौद्धिक ज्ञान में वृद्धि होने के साथ उसकी आत्मोन्नति भी होती है। अतः स्वाध्याय में प्रमाद करना अपनी आत्मा व जीवन की उन्नति में अवरोध लाना ही कहा जा सकता है। अब सेवा को धर्म से जोड़ कर देखते हैं। मनुस्मृति में धर्म की चर्चा करते हुए कहा गया है कि दूसरों के प्रति वह आचरण कदापि नहीं करना चाहिये जो आचरण हम दूसरे व्यक्तियों से अपने लिए पसन्द न करते हों। जिस प्रकार से हमें दूसरों का झूठ बोलना पसन्द नहीं है तो हमें भी किसी से असत्य का व्यवहार नहीं करना चाहिये। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सत्य बोलना धर्म है। इसी प्रकार से यदि हम कष्ट या मुसीबत में फंस जायें तो हम दूसरों से सहायता की अपेक्षा करते हैं। इसी प्रकार से हमारा भी कर्तव्य है कि यदि हम कहीं किसी को कष्ट या मुसीबत में देखें तो उसकी मदद करें। यही सिद्धान्त सेवा पर भी लागू होता है। दूसरों की मदद करना ही सेवा है। यदि समाज से दूसरों की मदद करने की भावना का विस्तार व प्रचार–प्रसार हो तो फिर किसी को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम दूसरों की सेवा व मदद करेंगे तो आवश्यकता या आपालकाल में दूसरों भी हमारी मदद अवश्य करेंगे। अतः सभी मनुष्यों को दूसरों की सेवा का व्रत धारण करना चाहिये। इससे हमारा समाज सामाजिक दृष्टि से उन्नत व सुखी होगा।

यज्ञ सनातन वैदिक धर्म संस्कृति का प्रमुख अंग है। यज्ञ देव पूजा, संगतिकरण तथा दान का समन्वित रूप होता है। देव पूजा में ईश्वर सहित सभी 33 जड़ व चेतन देवों की पूजा व सत्कार सम्मिलित है। संगतिकरण का तात्पर्य है कि वेद आदि शास्त्रों के विद्वानों के उपदेशों के ज्ञानियों का संगतिकरण कर उनके ज्ञान व अनुभव को प्राप्त करना। यह संगतिकरण विद्वानों के उपदेशों के श्रवण, वार्तालाप, उनसे पढ़कर, शंका समाधान आदि के द्वारा होता है। यही भी एक प्रकार से विद्वानों व ज्ञानियों की सेवा ही हो ता है। हम उनकी सेवा करेंगे, उन्हें आदर व सम्मान देंगे, उनके आश्रमों व निवासों पर समित्पाणि होकर जायेंगे तभी उनसे ज्ञान मिलना सम्भव है। हमने स्वयं भी संगतिकरण से लाभ उठाया है। सत्संगों में जाने और विद्वानों के उपदेश सुनने में हमारी प्रवृत्ति रही है। जिस विद्वान ने जिस ग्रन्थ पर आधारित प्रवचन किया या अपने उपदेश में जिस शास्त्र या ग्रन्थ विशेष का उल्लेख किया, हमने उस ग्रन्थ को प्राप्त कर उसे पढ़ा जिससे हमें उस ग्रन्थ की विषय–वस्तु व उसके विस्तार व उसमें

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

भारत में जितने मत हैं उतने ही भगवान पैदा हो गये हैं

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

दि. 6 नवम्बर 2015 को आजतक चैनल पर रात को साधु–सन्त और मौलवी सभी एकत्रित हुए थे, प्रश्न था कि क्या साईंबाबा भगवान का अवतार थे? उन लोगों के मत में ईश्वर का भी अवतार होता है, इन सबको लेकर तर्क–वितर्क चल रहा था। एक ने कहा कि स्वयं साईंबाबा बोलते थे कि सबका मालिक एक है, तो साईं को ईश्वर का अवतार कैसे माना जा सकता है। इतने में बाबा रामदेव को बोलते हुए दिखलाया गया कि–साईंबाबा हो अथवा राम या श्री कृष्ण, इन्होंने पंचतत्व एवं सूर्य चन्द्रादि की रचना नहीं की है, न कर सकते थे, इसलिए ये लोग भगवान् नहीं हो सकते। दूसरी बात उन लोगों का जन्म और मृत्यु भी हुआ है किन्तु ईश्वर (सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ होने से) अजन्मा है, उसका न जन्म होता है न मृत्यु। बस यहीं तक बोले। यदि बाबा रामदेव ऋषि दयानन्द के वैदिक सिद्धान्त को न जानते तो वेदानुकूल ईश्वर के सम्बन्ध में इस प्रकार का अपना मन्तव्य प्रकट न करते। उन्होंने साईंबाबा को ईश्वर अवतार मानने वालों को कोई प्रमाण नहीं दिया। वेद कहता है–'सपर्यगाच्छुक्रमकायम ब्रणम स्नाविरं शुद्धम पापविद्धम।' (यजु. 40,8) परमेश्वर सर्वव्यापक, अपने कार्यों में शीघ्रकारी, कायारहित, ब्रण तथा नस–नाड़ी से रहित शुद्धस्वरूप है जो कमी पापयुक्त नहीं होता अतः वह शरीर तथा नस–नाड़ी के बन्धन में कदापि नहीं आता।

रामायण में श्रीराम ने स्वयं स्वीकार किया है कि मैं राजा दशरथ का पुत्र हूँ। और यह भी कि–'समय जानि गुरु आयसु पाई, सन्ध्या करन चले दोउ भाई।। इससे भी सिद्ध है कि पुरुषोत्तम राम, ईश्वर नहीं थे क्योंकि यदि ईश्वर होते तो सन्ध्योपासना किसकी करते, अतः वह भी परमेश्वर की ही उपासना करते थे।

गीता अध्याय 18 में योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि–'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देश्येर्जुन तिष्ठति, तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।

अर्थात् हे अर्जुन अन्तर्यामी ईश्वर सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित है, हे–भारत तुम सब प्रकार से उसी की शरण में जावो तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

'अवतीर्यरथात् तूर्ण कृत्वा शौचं यथा विधि।रथमोचनमादिश्यसन्ध्यामुपविवेशह।' महा.उद्योग.अ. 84,21। महा.उद्योग. 83"

प्रस्तुत प्रमाणों से स्पष्ट है कि जब श्रीकृष्ण स्वयं ईश्वर की उपासना करते थे तो फिर वह ईश्वर कैसे हो सकते हैं? अतः जन्म–मरण के चक्र में फंसा हुआ व्यक्ति मनुष्य की श्रेणी में ही आता है, ईश्वर की नहीं। (इन विषयों को हम इसलिए लिख रहे हैं कि आज इन विचारों की जरूरत है)

श्री कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि–

'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तवचार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थपरतप।।' 4,5। हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। परन्तु हे परंतप, उन सबको तू नहीं जानता है और मैं जानता हूँ। इससे भी सिद्ध हो जाता है कि श्रीकृष्ण महापुरुष थे, ईश्वर नहीं।

यह अनेक भगवान का पैदा हो जाना, 5000 हजार वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध के बाद ही हुआ है। इसके पूर्व ही नैतिकता का पतन हो चुका था। अवैदिक आचरण अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये थे, उसकी परिणति महाभारत युद्ध हुआ था। इस भयंकर युद्ध में सारे विद्वान्, बलवान, गुणवान, बुद्धिमान, योद्धा, शूर–वीर, सारथी, महारथी अपने लोभ, मोह, लालच तथा स्वार्थपरता के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये। तत्पश्चात् अल्पविद्या भयंकरी की उक्ति चरितार्थ हुई। जो अल्पज्ञानी शेष बचे उन्होंने स्वेच्छा से कार्य प्रारम्भ कर दिया। किसी ने स्वयं को भगवान बताया, तो किसी ने अपनी ही पूजा व आराधना प्रारम्भ कर दी। वेद ज्ञान से रहित लोगों ने मनगढ़न्त धारणाओं एवं भ्रष्टतम मान्यताओं को शिरोधार्य किया। इस प्रकार अनेक प्रकार के तथाकथित भगवान, धर्म, पन्थ, मत पैदा हो गये। जितने भगवान पैदा होते गये, उतने ही अनाचार उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

मध्यकालीन इतिहासा वलोकन से ज्ञात होता है कि सनातन धर्म कभी नहीं रहा। हजरत मोहम्मद, ईसा मसीह, गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी, गुरु गोविन्द सिंह के पूर्व, तीन ही प्रमुख सम्प्रदायों का वर्णन मिलता है।

शक्ति के उपासक शाक्त, तथा शिव के उपासक शैव एवं विष्णु के आराधक वैष्णव कहलाते थे। इस प्रकार वैदिक विद्वानों के अभाव में अनार्यता फैलती गई उस समय सभी देश, धर्म का आदि स्रोत, वैदिक धर्म के सच्चे अर्थों को न समझकर उसी के टुकड़ों को धर्म समझकर सब विपरीत आचरण करने लगे और उसी के माध्यम से सब अपना अलग–अलग मजहब बनाना प्रारम्भ कर दिये।

यरुसलम में हजरत ईसा ने, ईसाई मत के लिये 'बाइबल' को रचा (इनका भगवान का नियम अलग है। अरब में पहले कुरैश वंशी लोग रहते थे। (वे वेद विरुद्ध मूर्त्तिपूजक, माँसाहारी और अत्याचारी थे) उन्हीं में हजरत मोहम्मद उत्पन्न हुए और उन्होंने इसलाम मत के लिये 'कुरआन' को प्रस्तुत किया (इनका भी खुदा का नियम अलग है, वह सातवें आसमान में रहता है) (बाइबल का भी आसमान में रहता है)।

इनके पहले भारत के ब्राह्मणों ने 2500 वर्ष पूर्व क्रमशः 18 पुराणों की रचना की। इनके भगवान तीन थे–'ब्रह्मा, विष्णु और महेश। उनके मत ब्रह्मा, में ब्रह्मलोक में बैकुण्ठ विष्णु क्षीर सागर में और शिव, कैलाश में रहते हैं। इनके पुराणों में जैसे स्वर्ग–नरक है वैसे ही कुरआन में भी है। पापियों को कष्ट जैसे नरक में दिया जाता है वैसे ही कुरान में भी दिया जाता है। असल में ब्रह्मा, विष्णु और महेश जो नाम हैं, वे वेदों से लिये गये हैं। ये ईश्वरीय सत्, रज और तम कणों की शक्तियों के नाम हैं जो सारी सृष्टियों में क्रियाशील हैं।

इस प्रकार वेदों में आये हुए जिन सब दैवी शक्तियों के नाम हैं, उस समय के ब्राह्मणों ने उनके कतिपय नामों से काल्पनिक मूर्तियाँ बनवाकर उन्हें भगवान बताना प्रारम्भ कर दिया। जैसे राम, कृष्ण, शिव, गणेश, दुर्ग=दुर्गा, धन का प्रतीक लक्ष्मी की, विद्या की प्रतीक सरस्वती की सब मूर्तियाँ बनवाकर अपनी रोटी–रोजी के लिये पूजा पाठ लोगों से करवाने लगे। उनके इन सब भगवानों तक पहुंचाने वाले केवल ब्राह्मण अर्थात पुजारी ही होते हैं। जैसे बिना ईसा मसीह के कोई उनके ईश्वर तक नहीं पहुंच सकता। बिना मेरे द्वारा कोई मेरे पिता के पास नहीं पहुंचता है। जो तुम मुझे जानते तो मेरे पिता को भी जानते।। (यो.प.14/आ.1–3,6,7) वैसे ही इस्लाम में भी बिना हजरत मोहम्मद के कोई अल्लाह के पास, जन्नत में नहीं जा सकता। (जब तक 'मुहम्मदर्रसूलल्लाह' न बोला जाय या न पढ़ा जाय तब तक कलमा आधा रहता है। यहाँ तक कि इस्लाम की दीक्षा लेने के लिये भी खुदा के साथ पैगम्बर का कलमा पढ़ना आवश्यक है। (आ. 31) के अनुसार पैगम्बर के बिना ईश्वर तक पहुंचना भी असंभव है। कहा जाता है कि रसूल के बिना खुदा का संदेश मनुष्यों तक नहीं पहुँच सकता, इसलिये पैगम्बर को नहीं छोड़ा जा सकता।

वेद एकेश्वर सिद्धान्त को मानता है, अतः इसमें ईश्वरेतर किसी की पूजा का वर्णन नहीं है 'इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः।। (ऋ. 1,7,10)

हे मनुष्यो! तुम्हें कभी मुझे छोड़कर अन्य को उपास्य देव नहीं मानना चाहिये। क्योंकि मुझ से भिन्न अन्य कोई ईश्वर नहीं है। ऐसा होने पर भी जो कोई भी ईश्वर में अनेकता का आरोप करता है, उसे मूर्ख ही मानना चाहिये।

संसार में यदि एक धर्म, एक ईश्वर को सब कोई मानने लगे तो यह विश्व स्वर्ग बन जाय। जैसे ईश्वर ने मानव कल्याण के लिये जीवन उपयोगी पंचतत्व एवं सूर्य चन्द्रादि को रचा है–वैसे ही एक धर्म ऐसा हो जिसके प्रयोग से मानव, मनुर्भव बन सके। जैसे माता–पिता अपने बच्चों को प्यार की दृष्टि से देखते हैं वैसे ही सभी मानव परस्पर सबको मैत्री भाव से देखे, किसी से किसी जाति से द्वेष–नफरत न करे। मन, वचन, कर्म से सत्य का व्यवहार करे। सभी लोग किसी से असत्य न बोलें। असत्य के व्यवहार से मानव कामी, क्रोधी और लोभी हो जाता है और यह लोभ भ्रष्टाचार को जन्म देता है। क्रोध, हत्या, कारकाट करवाता है। और कामुक लोग, काम के वश में ज्ञानान्ध होकर बलात्कार कर देते हैं। अतः जितने एक दूसरे को हानि पहुंचाने वाले अनुचित कर्म हैं सब अधर्म हैं। सच्चा धर्म एक दूसरे को मित्र बनाता है, भेद–भाव उत्पन्न नहीं करता।

धैर्य, सहनशीलता, मन को वश में रखना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना, बुद्धि का प्रयोग करना, यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में समय लगाना, सत्य बोलना, क्रोध न करना यह सब धर्म है, जो लोग इन इसको पालन करते हैं, उन्हीं को धार्मिक कहा जाता है। मैंने उपरोक्त धर्म सम्बन्धी जितनी बातें लिखी हैं, उसे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि सभी को मान्य हो सकती हैं, इसमें किसी की दो राय नहीं हो सकती।

अतः आध्यात्मिक ज्ञान को समझने के लिये, सभी मत वालों को नित्य योगाभ्यास अवश्य करना चाहिये। इसीलिये तो वर्ष में एक बार देश–विदेशों में 'योगदिवस' मनाया जाता है। इसके नियमित अभ्यास से ऊर्जा की प्राप्ति और मन की सारी अशुद्धियाँ दूर होने लगती हैं। यह योगक्रिया किसी का कोई मजहब नहीं है। यह वैज्ञानिक क्रिया है (इसे वैज्ञानिक ऋषि पतंजलि ने आविष्कार किया था) जब योगाभ्यासी ध्यान द्वारा मन की चंचलता

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–क्या जब हम समाधि अवस्था प्राप्त करें तब ही ईश्वर का अनुभव होगा?

समाधान–जी हाँ, ईश्वर का अनुभव, जो सूक्ष्म अनुभव है, जिसको समाधि कहते हैं, समाधि–प्रत्यक्ष कहते हैं, वो तो समाधि लगाने पर ही होगा। परंतु उससे पहले भी कुछ मोटे स्तर का अनुभव हो सकता है। और वैसे बहुत सारे लोगों को होता भी है, पर वो ध्यान नहीं देते, ध्यान कम देते हैं। कैसे होता है ईश्वर का अनुभव? पहले भी मैंने कहा था, कि जब हम बुरा काम करने की बात सोचते हैं, तो मन में भय, शंका, लज्जा होती है। होती है कि नहीं होती? होती है न। यह जीवात्मा की ओर से नहीं है। यह ईश्वर की ओर से है। ये 'सत्यार्थ–प्रकाश' के सातवें समुल्लास में लिखा है। इस तरह से हम अपने अंदर ईश्वर को अनुभव कर सकते हैं। जब हम अच्छी योजना बनाते हैं, तब आनंद, उत्साह, निर्भयता, ये अंदर से प्रतीत होता तो है। तो महर्षि दयानंद जी लिखते हैं यह ईश्वर का अनुभव है यह एक मोटे स्तर का आंतरिक अनुभव है। और एक दूसरा स्थूल–बाह्य अनुभव भी है, वो कौन सा है। इस प्रसंग में सातवें समुल्लास में लिखा है, गुणों को देखकर गुणी का प्रत्यक्ष होता है। प्रसंग यह चल रहा है, आप ईश्वर–ईश्वर कहते हो, उसकी सिद्धि कैसे करते हो? तो उत्तर दिया है, कि सब प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से हम ईश्वर की सिद्धि करते हैं। तो प्रत्यक्ष प्रमाण के प्रसंग में महर्षि दयानंद जी ने लिखा है, कि गुणों के माध्यम से गुणी का प्रत्यक्ष होता है। उदाहरण के लिये जैसे यह पृथ्वी है। पृथ्वी एक गुणी है, एक द्रव्य है। और इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि–आदि ये गुण हैं। जब हम पृथ्वी का प्रत्यक्ष करते हैं, तो आँख से देखकर के रूप के माध्यम से पृथ्वी का प्रत्यक्ष करते हैं, या इसकी (मिट्टी की) गंध आती है, तो गंध से हम पृथ्वी का प्रत्यक्ष करते हैं। अथवा हाथ से छूकर के स्पर्श गुण से प्रत्यक्ष करते हैं। इससे पता चला कि किसी पदार्थ का जो प्रत्यक्ष है, वो उस पदार्थ के गुणों के माध्यम से होता है। तो यह उदाहरण देकर महर्षि दयानंद जी आगे कहते हैं कि इस सृष्टि में ईश्वर के 'रचना आदि गुण' इस सृष्टि में देखिये। सूर्य ईश्वर द्वारा रचित पदार्थ है, चंद्रमा ईश्वर की रचना है, पृथ्वी ईश्वर द्वारा रचित पदार्थ है, और फल–फूल, वनस्पतियाँ, पशु–पक्षी, प्राणियों के शरीर, ये किसने बनाये? ईश्वर ने। तो सृष्टि के पदार्थों में ईश्वर की रचना आदि गुणों को सृष्टि में देखो और इस रचना को ध्यान से देखेंगे, तो भी हमको मोटे स्तर पर ईश्वर का अनुभव होगा, कि हाँ, कोई न कोई है, जो फूल बनाता है, कलियाँ बनाताा है, वनस्पतियाँ बनाता है, पेड़–पौधे बनाता है, और साग–सब्जी बनाता है, प्राणियों के शरीर बनाता है, सूरज–चाँद–धरती बनाता है, कोई न कोई है। इस तरह से मोटे स्तर का प्रत्यक्ष, बिना समाधि के भी हो सकता है। तो यह है दो प्रकार का प्रत्यक्ष। एक तो रचना आदि गुणों को देखकर ईश्वर का मोटे स्तर का अनुभव, और दूसरा अंदर वाला। अर्थात् भय, शंका, लज्जा के माध्यम से ईश्वर का अनुभव। यह दो तरह का अनुभव तो सबको हो सकता है। थोड़ा सा ध्यान देंगे, तो सबको हो जायेगा। बाकी तीसरा समाधि वाला सूक्ष्म है, कठिन है। इसलिए वो लंबे समय के बाद होगा।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

☞ *पृष्ठ 03 का शेष*

पीड़ितों की सेवा मनुष्य ...

निहित व उद्घोषित तथ्यों का ज्ञान हो गया। इस प्रकार स्वाध्याय करते–करते हमारी आज की स्थिति आ गई और हम विगत 25 वर्षों से महापुरुषों के जीवनों व आध्यात्मिक विषयों पर लेख आदि लिख लेते हैं। स्वाध्याय का हमारा व्रत चल रहा है। **स्वाध्याय भी एक प्रकार से ग्रन्थ व पुस्तक के लेखक के साथ संगति ही होता है। ग्रन्थ को पढ़कर लेखक के प्रति हमारे अन्दर जो आदर के भाव उत्पन्न होते हैं उससे उस विद्वान की अप्रत्यक्ष रूप से सेवा हो जाती है।** यदि स्वाध्याय की प्रवृत्ति न हो तो किसी लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक अनावश्यक सिद्ध हो जाती है और उसने अपने जीवन के अनुभव से पुस्तक के विषय में जो ज्ञान व अनुभव प्रस्तुत किये हैं, उनसे भावी पीढ़ी लाभान्वित नहीं हो पाती। अतः जीवित विद्वानों का प्रत्यक्ष रूप से संगतिकरण कर उनकी मौखिक व दान आदि से सेवा करना तथा दिवंगत विद्वानों के ग्रन्थों को पढ़ना भी एक प्रकार से सेवा का उदाहरण होने के साथ जीवन में अनेकशः लाभ प्रदान करता है।

एक बार वैदिक धर्म के विश्व विख्यात प्रचारक महर्षि दयानन्द किसी स्थान पर विराजमान थे। उन्होंने देखा कि सामने सड़क पर एक झोटा गाड़ी सामान से लदी हुई चढ़ाई पर जा रही है। भार अधिक होने के कारण झोटा प्रयास कर भी आगे नहीं बढ़ पा रहा है। उसका मालिक सोटे से बार–बार उसे पीट रहा है परन्तु वह झोटा प्रयत्न करने पर भी आगे बढ़ने में असमर्थ है। दयावान महर्षि दयानन्द अपने स्थान से उठे और उस गाड़ी के पीछे जाकर उसे आगे बढ़ाने में अपने बल का सहयोग किया जिससे वह गाड़ी आसानी से चढ़ाई पार कर गई। ऐसा करने पर गाड़ी का मालिक बहुत ही कृतज्ञता अनुभव कर हाथ जोड़कर दयानन्द जी का धन्यवाद कर रहा था तो उन्होंने कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो उनका कर्तव्य व धर्म था। यह उदाहरण यद्यपि छोटा है परन्तु इससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। ऐसे उदाहरण हमें यदा–कदा देखने को मिलते रहते हैं। यदि हम इसे अपनी प्रवृत्ति में सम्मिलित कर लें तो इससे समाज में एक अच्छा संदेश जा सकता है और एक अच्छी परम्परा को स्थापित किया जा सकता है। यहां हम यह भी जोड़ना चाहते हैं कि ईश्वर के गुणों का अध्ययन करने पर हमें उसमें दया और करुणा का गुण भी ज्ञात होता है। यदि माता–पिता के समान हमारे जन्मदाता परमात्मा में दया और करुणा का गुण है तो हमारे अन्दर भी यह गुण अवश्य ही विद्यमान होना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम ईश्वर को अप्रसन्न करते हैं और इससे हमारी ही हानि होती है।

हमारा वेदों के विद्वान और देश के विभिन्न भागों में 9 आर्ष गुरुकुलों के संचालक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती से निकट सम्पर्क है। कुछ वर्ष पूर्व स्वामीजी इतने रोगी हो गये कि उन्हें लगभग 6 माह से अधिक शय्या पर ही रहना पड़ा। कैंसर जैसा भयानक रोग उन्हें बताया गया। उनकी चिकित्सा चलती रही और वह स्वस्थ हो गये। इसके अतिरिक्त भी उन्हें अनेक बार अनेक प्रकार की शारीरिक व्याधियों ने आक्रान्त किया परन्तु वह स्वस्थ होते गये। हमने एक बार उनसे पूछा कि स्वामीजी आप अनेक रोगों से अनेक बार त्रस्त रहे और असाध्य रोग पर भी आपने विजय प्राप्त की, इसका मुख्य श्रेय आप किस बात को देते हैं तो उन्होंने कहा कि मैंने जीवन में वृद्धों व विद्वानों की यथासम्भव सेवा की है। मेरा बार–बार रोगाक्रान्त होकर पुनः स्वस्थ हो जाना, मैं उनके आशीर्वाद का परिणाम मानता हूँ। हमें लगता है कि उनकी यह बात सर्वथा सत्य है। सेवा करने पर हमे जो शुभकामनायें व आशीर्वाद मिलता है उससे हमें जीवन में आयु, विद्या, यश व बल की प्राप्ति होती है, ऐसा मनुस्मृति में वर्णित है और इस ग्रन्थ के यह विचार व विधान सत्य सिद्ध हैं तथा स्वामीजी का जीवन इसका प्रमाण है।

सेवा में अनेक रूप हो सकते हैं। किसी रोगी की सेवा करना भी सेवा के ही अन्तर्गत आता है। रोगी की सेवा उसके लिए अच्छा भोजन, वस्त्र, ओषधियां व चिकित्सा की सुविधा प्रदान कर की जा सकती है। आज कल चिकित्सा के क्षेत्र में अनाचार चरम पर सुना जाता है। हम भी अपने जीवन में यदा–कदा इसका अनुभव करते रहते हैं। चिकित्सकों को तो ईश्वर के बाद दूसरा स्थान प्राप्त है। रोगियों के प्रति उनकी सद्भावना होनी चाहिये न कि येन केन प्रकारेण उनसे अधिकाधिक धन कमाने की प्रवृत्ति। परन्तु स्वार्थ की प्रवृत्ति का आजकल सभी वर्गों में अमर्यादित रूप से विस्तार हो रहा है जिससे समाज में सर्वत्र चिन्ता व दुःख अनुभव किया जा रहा है। इसका भविष्य में क्या परिणाम होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन है। हमें लगता है कि ऐसा वैदिक शिक्षा से दूर जाने के कारण हुआ है। जब तक बच्चों को आरम्भ से वेद व उपनिषद के अनुसार आध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा नहीं दी जायेगी, निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करने वाले सत्पुरुष समाज में उत्पन्न नहीं किये जा सकते। अपवाद तो हो सकते हैं परन्तु शुभ गुणों से युक्त मनुष्य का निर्माण वैदिक आध्यात्मिक शिक्षा व संस्कारों से होना ही सम्भव है। हम समझते हैं कि जीवन को सफल करने के लिए हमें अपने चारों ओर के वातावरण में सबको स्वस्थ, शिक्षित व सम्पन्न बनाने का प्रयास व ऐसी सद्भावनाओं को अपने हृदय में स्थान देना होगा, साथ हि इसके लिए मन, वचन व कर्म से प्रयास व सहयोग करना होगा, तभी हम मनुष्य जीवन को सार्थक कर सकेंगे। वैभव पूर्ण जीवन जीना ही प्रशस्त जीवन नहीं है अपितु दूसरों के दुःखों का निवारण करना और सबकी प्रसन्नता में प्रसन्न होना ही वास्तविक मनुष्य जीवन है।

पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
मो. 09412985121

वैदिक वाङ्मय में गणतन्त्रीय स्वतन्त्रता की अवधारणा

● डा. धर्मवीर सेठी

15 अगस्त को लाल किले की प्राचीर से राष्ट्रीय ध्वज का आरोहण करते प्रधानमन्त्री और 26 जनवरी गणतन्त्र दिवस पर भारत की राजधानी नई दिल्ली के राजपथ पर ध्वजारोहण करते एवं सेना के तीनों अगों के विभिन्न दस्तों से सलामी लेते हुए राष्ट्रपति को जब देखा तो मन में विचार उठा कि क्या कभी हमारे प्राचीन मनीषियों ने भी इस विषय पर मनन किया था और यदि हाँ, तो उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता का क्या अर्थ हो सकता है?

गत कुछ वर्षों को जब भ्रष्टाचार, लूट–खसोट, मँहगाई, राजनैतिक अनैतिकता, स्कैम, शिष्टाचार हीनता के वर्ष कहा जाता है तो मन में विचार उठता है कि क्या स्वतन्त्रता का अभिप्राय है (सर्व प्रकारेण) नियन्त्रण हीनता? स्वराज्य अथवा स्वतन्त्रता में होना चाहिए स्व–नियन्त्रण और गणराज्य से अभिप्रेत है गण अर्थात् सामाजिक–नियंत्रण। परन्तु खेद है कि हम अनु–शासन, नियम–पालन, न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के निर्देशों को ताक पर रख कर अपने आप को उनसे ऊपर समझने लगे हैं। येन–केन–प्रकारेण धनार्जन और ख्याति–प्राप्ति हमारे लक्ष्य बन चुके हैं। शायद इसी कारण देश में त्राहि–त्राहि मची हुई है। दूसरों के सम्मान को मानो हमने ताक पर रख दिया है।

ऐसी स्थिति में यजुर्वेद अध्याय 22 के 22वें मंत्र को उद्धत करने की इच्छा जागृत होती है जिससे गणतंत्र का वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो सके:

ओं आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्यो ऽतिव्याधी महारथो जायताम्
दोग्ध्रीधेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषाजिष्णुरथेष्टा
सभेयोयुवास्य यजमानस्य वीरो जायमात्
निकामे–निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो नः कल्पताम्।।

वैदिक ऋचा का हिन्दी भावानुवाद भी प्रस्तुत है:

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल विनाशकारी।।
होवें दुधारु गौवें, वृष अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही।।
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें।।
फल–फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हो योगक्षेम–कारी, स्वाधीनता हमारी।।

सर्वप्रथम द्विज अर्थात् राष्ट्रीय नेतृत्व कैसा हो, इसकी चर्चा है। वे तेजस्वी, मनीषी, परमपिता परमात्मा के सच्चे अर्थों में प्रतिनिधि बनकर नेतृत्व करने वाले होने चाहिएँ; क्षत्रिय अर्थात् सेना के तीनों अंगों में ऐसे शक्तिशाली नौजवान हों जो शत्रु समूह को चने चबवा सकें–1965 और 1971 के भारत–पाक युद्ध किसी सीमा तक इसके उदाहरण हो सकते हैं। गौ (माता) की राष्ट्र में रक्षा होनी चाहिए जिससे उनके दुग्ध से राष्ट्र के युवकों का पोषण हो सके। बैल और घोड़े भी शक्तिशाली हों अर्थात् इन शब्दों का प्रतीकात्मक रूप से अभिप्राय है कि देश में पशु–पक्षियों की सर्व प्रकारेण रक्षा हो न कि देश में बाघों को बचाने की मुहिम जारी करनी पड़े और गो–हत्या पर प्रतिबन्ध के लिए अन्दोलन छेड़ना पड़े।

राष्ट्र को जीवन्त रखने वाली तो नारी ही होती है जिसे माता की संज्ञा दी जाती है। 'माता निर्माता भवति'। यहाँ तक कि हमारे देश भारत को 'माता' कह कर पुकारा जाता है जैसे 'भारत माता ग्राम वासिनी' या 'भारत माता की जय' आदि। विश्व में शायद ही किसी अन्य देश को ''माता'' की संज्ञा प्रदान की जाती हो। इससे भलीभाँति अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्र की अस्मिता नारी जाति पर निर्भर करती है। उसी ने तो विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत युवक–युवतियों को जन्म देकर, सही ढंग से लालन–पालन कर इस योग्य बनाया। वही बनाने और बिगाड़ने वाली होती है।

राष्ट्र रक्षक योद्धा बलवान और सभ्य होने चाहिएँ। सन्तति को भी आदर्श बनना होगा। जो बालिका (ओं) का बलात्कार करने वाले होंगे तो राष्ट्र को शर्मिन्दा ही करेंगे। आए दिन ऐसे घिनौने समाचार पढ़कर एक ही प्रश्न मन में उठता है कि हम (राष्ट्रभक्त?) किधर जा रहे हैं। यह विषय अत्यन्त मार्मिक और ईमानदारी से विचारणीय है।

प्राकृतिक दृष्टि से यद्यपि भारतवासियों को छः विभिन्न ऋतुओं का आनन्द मिलता है परन्तु महत्वपूर्ण है वर्षा का जल। इसीलिए ऋचा कहती है कि बादलों को इच्छानुसार बरसना चाहिए जिससे पानी की कभी भी कमी न हो, सूखा न पड़े, सब प्रकार के ताप दूर हो सकें। ऐसा होने से वनस्पतियाँ भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो सकेंगी और औषधियाँ कारगर होंगी।

मन्त्र के अन्तिम दो शब्दों 'योग क्षेम' अत्यन्त सारगर्भित हैं। राष्ट्रहित के लिए जिस वस्तु की कमी हो उसे प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना (योग) और जो भी कल्याणकारी हमें प्राप्त हो चुका है उसकी सम्यक् भाव से रक्षा करना (क्षेम), न कि अपने देश के गोपनीय (Secrets) को चन्द सिक्कों के लिए दूसरे देशों को बेच देना अथवा भ्रष्टाचार के मायाजाल में ऐसे फंसना जिससे देश की चिन्ता ही न हो। पठानकोट एयर बेस पर आक्रमण की घटना ऐसे ही कुछ देशद्रोही तत्वों का कारनामा है।

बड़े अभिमान से हमने अपना 65 वाँ गणतन्त्र दिवस मनाया परन्तु क्या हमारा गणतन्त्र वेद–विहित कसौटी पर खरा उतरता है? समय आ गया है इस पर पुनर्विचार करने का, 'मन्त्र द्रष्टारः' ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त करने का क्योंकि हमारे आर्यावर्त के पास वैदिक साहित्य की धरोहर है।

'वरेणयम्' ए–1055, सुशान्त लोक–1
गुरुग्राम–122001

विद्यार्थी के विनाश के कुछ कारण

● डॉ. अशोक आर्य

ऋग्वेद के मन्त्र संख्या 8.33.19 के अनुसार विद्यार्थी के लिए आदेश दिए गए हैं। इनके अनुसार परमपिता परमात्मा उपदेश देते हुए कह रहे हैं कि हे शिक्षा प्राप्ति के इच्छुक ब्रह्मचारी ! :

1. नग्न तथा अश्लील चित्रों का प्रदर्शन

तूं इस प्रकार के परिधान को धारण कर कि तेरे शरीर का कोई अंग दिखाई न दे, विशेष रूप से तेरे गुप्तांगों को कोई भाग अन्य किसी को दिखाई न दे। यह ही आर्य मर्यादा है। आर्य मर्यादाओं को धारण करना और इन पर चलना तेरे लिए आवश्यक कर्त्तव्य है। इसलिए ईश्वर की इस आज्ञा को मान। जब तुम आर्य मर्यादाओं को ध ाारण करोगी तो निश्चय ही ब्रह्मा के सर्वोच्च पद को प्राप्त करोगी। इसके बिना तुम शिक्षा के सर्वोच्च पद ब्रह्मा को नहीं पा सकती।

इसके लिए यह आवश्यक है कि अश्लील चित्रों से सदा दूर रहें। इसके लिए समाज के लोगों के भी कुछ कर्त्तव्य हैं। उन्हें चाहिए कि हमारी भावी सन्तानों को अश्लीलता से बचाने के लिए कहीं भी नग्न अथवा अर्ध–नग्न चित्रों का सार्वजनिक स्थानों पर प्रदर्शन न होने दें।

2. सिनेमा से विद्यार्थी दूर रहें

आज के युग में विद्यार्थी की अनुशासनहीनता का जो सब से बड़ा कारण माना जाता है, वह है सिनेमा तथा दूरदर्शन। अपनी जेबें भरने के लिए किसी भी चलचित्र के निर्माता अश्लील दृश्यों तथा अश्लील गीतों को अपने चलचित्र में अवश्य ही डालते हैं, इन्हें देखने की इच्छा प्रायः सब लोगों की रहती है। उनका उद्देश्य समाज सुधार तो होता नहीं, केवल धनार्जन करना होता है। यह ही कारण है कि आज हमारे देश में भी विदेशी चलचित्रों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा है तथा इन में वासनात्मक दृश्य तथा गीत दिखाने पर ही इन निर्माताओं का ध्यान केन्द्रित हो गया है तथा इस प्रकार के चित्र दिखाने में इन्हें आनंद आता है क्योंकि इस से उनकी तिजोरिया भर जाती हैं। इन चित्रों तथा इन गीतों का विद्यार्थी पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव डालने वाले इस प्रकार के ही चित्र दूरदर्शन ने भी अपना लिए हैं, जिससे आज का विद्यार्थी अत्यधिक बुरे प्रभाव से प्रभावित हो रहा है।

चलचित्रों के इस बुरे प्रभाव से केवल युवक ही नहीं युवतियाँ भी प्रभावित हो रही हैं। इस कारण वह अपनी नैतिकता से दूर जा रही हैं और उनका नैतिक पतन निरंतर हो रहा है। जब भी कभी कोई शिष्टमंडल इस सम्बंध में आकाशवाणी, दूरदर्शन

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

1. नग्न तथा अश्लील चित्रों का प्रदर्शन

तूं इस प्रकार के परिधान को धारण कर कि तेरे शरीर का कोई अंग दिखाई न दे, विशेष रूप से तेरे गुप्तांगों को कोई भाग अन्य किसी को दिखाई न दे। यह ही आर्य मर्यादा है। आर्य मर्यादाओं को धारण करना और इन पर चलना तेरे लिए आवश्यक कर्त्तव्य है। इसलिए ईश्वर की इस आज्ञा को मान। जब तुम आर्य मर्यादाओं को धारण करोगी तो निश्चय ही ब्रह्मा के सर्वोच्च पद को प्राप्त करोगी। इसके बिना तुम शिक्षा के सर्वोच्च पद ब्रह्मा को नहीं पा सकती।

नारायण का वारण्ट, नर के नाम

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

वारण्ट अपने आप में भयावह शब्द है। किसी से भी कह कर देख लीजिए 'आपके नाम वारण्ट आया है।' वह व्यक्ति घबरा जायेगा। यह है भी स्वाभाविक। जब कोर्ट से वारण्ट आते हैं तो लोग या तो लेने से इंकार कर देते हैं या फिर भाग जाते हैं। यदि जाने अनजाने में कोर्ट या पुलिस का वारण्ट स्वीकार भी कर लिया तो वे वकील के पास जाते हैं, राय लेते हैं कि इससे कैसे बचा जाय। यदि वारण्ट हिन्दी में हो तो समझने में अधिक कठिनता नहीं होगी, अंग्रेजी में हो तो समझने में थोड़ी बहुत कठिनता तो होगी ही परन्तु यदि वारण्ट संस्कृत में हो तो पसीने छूट जायेंगे। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ।

एक सज्जन मेरे घर पधारे। एक पुस्तक (चाणक्य नीति) के एक श्लोक की ओर संकेत करके मुझ से बोले, 'यह तुम्हारे नाम का वारण्ट है।' मैं घबराया, मेरे नाम का वारण्ट और वह भी संस्कृत में। मैंने पुनः प्रश्न किया, 'मेरा वारण्ट और वह भी संस्कृत में, ऐसा क्यों?, इस पर वे बोले "जिस महाशय ने वारण्ट भेजा है उसकी प्रार्थना तुम संस्कृत में करते होगे, अतः उन्होंने समझा होगा कि तुम संस्कृत के ज्ञाता हो। अतः उन्होंने संस्कृत के एक श्लोक के माध्यम से ही वारण्ट जारी किया होगा।" मैंने कहा, "पढ़ कर सुनाइये।" इस पर उन्होंने कहा, "तुम्हारे नाम का वारण्ट है तुम्हीं पढ़ो।" तब मुझे पढ़ना ही पड़ा। वारण्ट इस प्रकार था–

हस्तौ दान विवर्जितौ,
श्रुति पुटौ सारस्वत द्रोहिणी।
नेत्रे साधु विलोकनेन रहिते,
पादौ न तीर्थं गतौ।।
अन्यायार्जित वित्तपूर्णमुदरं,
गर्वेण तुंग शिरौ।
रे रे जम्बुक मुंच मुंच सहसा,
नीचं सुनिन्द्यं वपुः।।

श्लोक में अंकित वारण्ट का भाव इस प्रकार था 'यदि तुमने अपने हाथों से जीवन में कभी भी दान नहीं दिया है, तुम्हारे कानों ने कभी भी वेद वाणी नहीं सुनी है, तुम्हारे नेत्रों ने महापुरुषों के दर्शन नहीं किए हैं, तुम्हारे चरणों ने शुभ कार्य हेतु तीर्थ यात्रा नहीं की है, तुमने अन्याय पूर्वक धनोपार्जन करके उदर पूर्ति की है और फिर भी यदि तुम गर्वपूर्वक मस्तक को ऊँचा करके घूम रहे हो तो मेरे द्वारा किराये में दिए गए शरीर रूपी मकान को अभी, इसी पल खाली कर दो, छोड़ दो। तुम इस शरीर में रहने के अधिकारी नहीं हो।'

यह था उस वारण्ट का अभिप्राय। 'वारण्ट' में 'जम्बुक' शब्द का प्रयोग किया गया था। 'जम्बुक' का अर्थ होता है गीदड़ या सियार। उनके कहने का अभिप्राय यह था कि जैसे सियार किसी दूसरे पशु (सिंहादि) के द्वारा मारे गए मांस को खाता है, स्वयं पुरुषार्थ नहीं करता, उसी प्रकार तुम मेरे द्वारा दिए गए किराये के शरीर रूपी मकान में गुलछर्रे उड़ा रहे हो और अगले जन्म के लिए देव या मानव शरीर पाने हेतु शुभ कर्म नहीं कर रहे हो तो तुम्हें इस शरीर में भी रहने का अधिकार नहीं।

वारण्ट पढ़कर मैं बुरी तरह घबरा गया। मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मैं किराये के मकान में रह रहा हूँ। अपने मकान और किराये के मकान में यही अन्तर होता है, आपके अपने मकान को कोई कभी भी खाली नहीं करा सकता और किराये के मकान को कभी भी खाली कराया जा सकता है। अतः मुझे अब यह स्पष्ट हो गया कि मेरा मकान मालिक, बचपन हो या यौवन, प्रौढ़ावस्था हो या वृद्धावस्था कभी भी मकान छोड़ने के लिए कह सकता है। फिर मेरे मालिक (परम पिता परमेश्वर) ने मुझ से वारण्ट के माध्यम से जो प्रश्न पूछे हैं, उनमें से मैं एक भी पूरा नहीं करता हूँ।

जिसका अपना मकान न हो और किराये के मकान से भी निकाल दिया गया हो, वह रहेगा कहाँ? किसी झोपड़ी में, खुले आकाश के नीचे या पशुओं के बाड़े में। वैसे प्रायः समदाकर मकान मालिक बिना किसी विशेष कारण के मकान खाली नहीं करवाते हैं। वे मकान तभी खाली करवाते हैं, जब किरायेदार तोड़–फोड़ कर दे, सफाई न करे या पानी–बिजली का बिल न दे। मैं सोचने लगा कि मैंने इनमें से कौन सा अपराध किया है। इस संदर्भ में मुझे बहुत पहले दिए गए वार्निंग लेटर की याद आ गई जिसमें लिखा था–

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्
पशुर्भि नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः
पशुर्भि समानाः।

अर्थात् जो ईश्वर के द्वारा दिए गए शरीर रूपी किराए के मकान में रहते हुए भी इसे केवल भोजन, निद्रा, भय और मैथुन के द्वारा गंदा रखते हैं और धर्म की पुताई और सफाई का ध्यान नहीं रखते, उन्हें पशुओं के बाड़े में धकेल दिया जाता है। दरअसल हम किराये के मकान में ही जन्म लेते हैं और भूल जाते हैं कि एक दिन हमको निकाला भी जा सकता है। अतः जब हमारा मकान मालिक हमसे मकान खाली करवाता है तो हम चीखते–चिल्लाते हैं, बेहोश भी हो जाते हैं पर मकान मालिक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

क्या कभी आपने और हमने सोचा है कि परम पिता परमात्मा रूपी मकान मालिक ने हमें ही मानव शरीर रूपी किराये का मकान क्यों दिया है, अन्य प्राणियों को क्यों नहीं दिया? इसका उत्तर है–

'महता पण्य पुण्येन क्रीतेयं काय नो त्वया।'

अर्थात् हे मनुष्य, तूने पिछले जन्मों की पुण्य रूपी पूँजी से यह नर तन का मकान किराये में लिया है। जैसे आजकल कई जगह किराये के मकान के लिए पहले पगड़ी दी जाती है उसी प्रकार मनुष्य ने भी पिछले जन्मों के शुभ कर्मों की पगड़ी देकर यह नरदेह रूपी किराये का मकान लिया है। इसमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की दस खिड़कियाँ हैं, मन और बुद्धि की ट्यूब लाइट लगी हुई है तथा प्राणों का पंखा हर समय हवा देता रहता है। ऐसे सुन्दर सुव्यवस्थित मकान को कौन किरायेदार छोड़ना चाहेगा? तुलसीदास जी को भी यह किराये का मकान भा गया था, तभी तो उन्होंने लिखा है–

बड़े भाग मानुष तन पावा।'

आपको एक बात और बता दूँ। इससे पहले मुझे छोटे–मोटे दो–तीन वारंट पहले भी मिल चुके हैं। पर मैंने उनकी परवाह नहीं की। जब पहली बार मेरे सिर का एक केश सफेद हुआ था, वह मकान मालिक का पहला वारण्ट था कि मकान छोड़ने की तैयारी कर लो, लेकिन मैंने खिजाब लगा कर सफेद केश को भी काले रंग में रंग लिया। फिर दूसरा वारंट आया–आँखें कमजोर हो गई, जिसका अभिप्राय था कि यदि तुमने मकान में तोड़–फोड़ कम न की तो तुम्हारी बिजली गुल कर दी जायेगी। पर मैंने चश्मा लगा कर उस वारंट की भी उपेक्षा कर दी। फिर मकान मालिक ने तीसरा वारण्ट भेजकर मेरे एक–दो दाँत गिरा दिए। पर मैंने नकली दाँत लगा कर अपनी बत्तीसी पूरी कर ली। तब मकान मालिक ने अपना अन्तिम महा वारण्ट भेज कर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि 'मुंच–मुंच' अर्थात् किराये के मकान को अभी, इस पल खाली करो।

प्यारे पाठको! मुझे तो यह महा वारण्ट मिल गया है। क्या आपको भी मिला है? यदि आपको भी मिला हो तो आप इस सन्दर्भ में जो कार्यवाही करेंगे या वारण्ट का जो उत्तर देंगे उससे मुझे भी अवगत करा दें। पर जरा जल्दी करें, कहीं ऐसा न हो कि मुझ से मकान पहले खाली करा लिया और आपका उत्तर बाद में मिले। फिलहाल आप मेरा एड्रेस नोट कर लें और इसी पते पर उत्तर दें।

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो.9639149995

☞ *पृष्ठ 04 का शेष*

भारत में जितने मत हैं ...

को एकाग्र करने लगता है तब वह अपने अन्दर (स्वस्वरूप चैतन्य प्रकाश) के खजाने को समझने लगता है। और ईश्वर को प्रणव प्राण के समान बोध करने लगता है। उसकी बुद्धि तीव्र और सूक्ष्म हो जाती है।

प्रश्न– कहा जाता है कि ईश्वर व्यापक होने से सब को प्राप्त है तो जब वह सबको प्राप्त है तो मनुष्य उसकी प्राप्ति की कामना क्यों करता है?

उत्तर–ईश्वर परमाणुओं से अत्यन्त सूक्ष्म होने से वह सबसे परे है, उस परमेश्वर की कोई गति नहीं; वह प्राण के समान पूर्ण तथा सबका यथायोग्य प्रकाशक है। उसकी उपासना इसलिये की जाती है कि उसका आनन्द अप्राप्त है। जैसे मनुष्य को रसगुल्ला तो प्राप्त है, पर उसका स्वाद कैसा है पता नहीं, पर जब वह उसे खाता है तभी उसके स्वाद का पता चलता है। इसी प्रकार जब मनुष्य अष्टांग योग की साधना करता है तभी उसे ईश्वरानन्द का बोध होता है।

योनियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं–भोग योनि जैसे–पशु–पक्षी आदि में भी ईश्वर है, पर उनमें स्वाभाविक ज्ञान के होने से वे उस ईश्वर को जान नहीं सकते। उभ योनि अर्थात् भोग योनि और कर्म योनि का मिश्रण जैसे मनुष्य, यह मानव जन्म आध्यात्मिक उन्नति के लिये होता है इसलिये उन्हें स्वाभाविक ज्ञान के अलावा नैमित्तिक ज्ञान प्राप्त हुआ है। कर्मयोनि, यह तीसरी कर्मयोनि उन मुक्त पुरुषों की है, जो मुक्ति से लौट कर जन्म लेते हैं और साधना से ऋषि अथवा महापुरुष बनकर अधर्म का नाश कर सच्चे धर्म की स्थापना तथा देश और समाज का सुधार करते हैं।

मु.पो. मुराई,
जिला–वीरभूम (प. बंगाल)
731219
मो. 8158078011

नारी सशक्तिकरण

● प्रिं. अनिता चोपड़ा

माँ की गोद मिलते ही शिशु का रुदन पता नहीं कहां चला जाता है। माँ की गोद उसे निश्चिन्त बना देती है, अभय प्रदान करती है, अमृत दुग्ध पिलाकर आनन्द सागर में निमग्न कर देती है। कैसी प्यारी गोद है माँ की! परमात्मा ने जैसा हृदय माँ को दिया है वैसा हृदय और किसी को नहीं दिया और वह माँ कौन है–एक नारी, एक जगदम्बा–ऐसा कहा है स्वामी महात्मा आनन्द सरस्वती जी ने नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है, यह सृष्टि रचयिता की त्याग, तपस्या, प्रेम और ममता की एक परमपिता की महान रचना है। प्रेम, त्याग, ममता से परिपूर्ण होने के उपरान्त भी वह दुःखों से समझौता कर रही थी और समस्याओं से घिरी हुई थी। नारी की इस संवेदनशील दुःखद और दुर्दशाग्रस्त स्थिति को देखकर एक संवेदनशील कवि ने कहा है:–

नारी जीवन एक झूले की तरह,
इस पार कभी उस पार कभी।
आँखों में अँसुवन धार कभी,
होठों पर मधुर मुस्कान कभी।।

समाज स्त्री–पुरुष के योग से बनता है, दोनों का समान महत्व है, जीवन की गाड़ी दोनों में से एक के बिना चलने में असमर्थ है। भारतीय समाज में नारी को दुर्गा, शक्ति, लक्ष्मी और भवानी कहा गया है, मनु स्मृति में नारी को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता"।** नारी सशक्तिकरण का अर्थ नारी को सशक्त करना नहीं, नारी सशक्तिकरण का अर्थ नारियों के अधिकारों का समर्थन नहीं, नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य है नारी–पुरुष इस संसार में समान हैं, बराबर हैं, बराबर का दर्जा है, और यह बराबर का दर्जा नारी को ईश्वर ने दिया है, अतः इसी आधार पर दोनों को समान समझा जाना चाहिए।

बहुत से लोग यह समझते हैं कि नारी सशक्तिकरण का अर्थ है नारी को कमजोर से शक्तिशाली बनाना, यह विचारधारा ही गलत है। जो स्वयं परमात्मा की शक्ति का स्वरूप है–उसको कौन शक्तिशाली बना सकता है? इसके लिये यह सोच ही निम्न है, समझ से बाहर है।

नारी सशक्तिकरण का अर्थ है कि जो नारियों के मूलभूत अधिकार हैं, यानी सामाजिक व्यवस्था में बराबरी की हिस्सेदारी, वह उसे मिलना चाहिए। और क्यों न मिले जब वह जन्मदात्री है, शुभ चिन्तक है, शक्तिस्वरूप है।

दुनिया में आधी आबादी स्त्रियों की है, अब लिंग भेद के आधार पर कार्यों या अधिकारों का विभाजन नहीं होना चाहिए। यह मेरा मत है, हमारा मत है, विश्व की सभी नारियों का मत है, महापुरुषों का मत है और उनका आशीष है।

वैदिक काल में नारियों की स्थिति बहुत ही सशक्त थी, नारियाँ विदुषी थीं, ऋषिकायें थीं। ऋषिका का अर्थ है–मंत्रों का प्रचार करने वाली, मंत्रों को देखने वाली, मंत्रों का भाष्य करने वाली।

वह नियमपूर्वक अपने पति के साथ हवन में सम्मलित होती थी, वर तलाश करने में सक्षम थी; और यदि कन्या को योग्य वर नहीं मिलता था, तो वह सम्मानपूर्वक अपने पिता के घर रह सकती थी, जीवन पर्यन्त माता की सम्पत्ति की वह बराबर की हकदार थी। बाल–विवाह, सतीप्रथा जैसी कुप्रथा नहीं थी। गार्गी, मैत्रेयी, द्रौपदी, मदालसा, शिवा, इड़ा आदि मनु की पुत्री, इड़ा को 'यज्ञान काशिनी' कहा गया है, यज्ञान काशिनी का अर्थ है यज्ञ तत्व प्रकाशन समर्था। मैत्रेयी को ब्रह्मवादिनी कहा गया है जो वेदों की ज्ञानी है।

वेद शास्त्रों में पांच देवताओं की पूजा लिखी गई है–माता, पिता, आचार्य और अतिथि, अमूर्तिमान पाँचवें देवता परमपिता परमात्मा हैं। सबसे पहला देवता माता को ही पूजनीय बताया गया है। और माता कौन है? एक नारी।

शंकराचार्य ने जिस भारतीय देवी से शास्त्रार्थ किया था वह एक नारी ही थी।

वैदिक काल में ऋषियों के साथ, मुनियों के साथ शास्त्रार्थ करने वाली, देश को, पतियों को, भाइयों को प्रकाश देने वाली नारी की स्थिति मध्यकाल होते–होते दुःखद पूर्ण हो गयी–खो गयी, खो गई उसकी विद्या, खो गया उसका स्वरूप, खो गई उसकी शक्ति, हो गई वह बेकार, कन्या का जन्म मातम समझा जाने लगा। नारियों के कारण युद्ध होने लगे, नारियों को भोग–विलास की एक वस्तु समझा जाने लगा। बहु–विवाह होने लगे। विदेशी आक्रमणकारियों से रक्षा हेतु उसे पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, सती प्रथा आदि कुप्रथाओं में बांध दिया गया। नारी जाति को समान अधिकार से वंचित कर दिया गया। नारी को पैर की जूती समझा जाने लगा। एक गणमान्य पुरुष ने तो यहाँ तक कहा– द्वारं किमेकं नरकस्य? नारी ही नरक का द्वार है। तुलसीदास ने भी नारी को उच्चतर से निम्नतर स्तर पर पहुँचा दिया। सुन्दर कांड की चौपाई में लिखा –ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।

वह नारी जो देवी थी धीरे–धीरे अपने पद से खिसकने लगी। नारी के मूल अधिकारों पर प्रतिबंध लगाकर पुरुष को बेहतर बताकर उसको शक्तिहीन, विचारहीन और साहसहीन कर दिया गया और नारी अपनी रक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर हो गयी। समाज के लिए कलंक बन गयी, बोझ बन गई। इस समाज ने पुरुष को नारी का देवता बना दिया। और उसने नारी के शरीर, मन और आत्मा सभी पर अपना अधिकार डाल लिया। कई शासक बदले लेकिन भारतीय समाज में यह स्थिति और सामाजिक समस्यायें ज्यों की त्यों बनी रहीं। अठ्ठारहवीं सदी के उतरार्द्ध तक भारत अंग्रेजी प्रभुत्व में जकड़ चुका था। अंग्रेजी कुशासन से मुक्ति में प्रयासरत महापुरुषों ने सर्वप्रथम भारतीय जनमानस की विचारधारा को सामाजिक कुरीतियों से मुक्त करने का प्रयास किया। भारतीय रूढ़िग्रस्त विचारधारा में परिवर्तन हेतु इन सामाजिक आंदोलनों ने अपनी विशेष भूमिका निभाई। इन्हीं में स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक की महत्वपूर्ण भूमिका है।

नारी जाति के उत्थान पर विशेष बल दिया, महत्व दिया। एक विदेशी विद्वान डाक्टर 'वाल्टनस्मिथ' ने कहा है, संसार में नारी नहीं तो संसार उसी तरह सूना और भयानक दिखने लगेगा जिस तरह वह मेला, जिसमें न तो खरीद है न क्रय–विक्रय और न ही लेन–देन और न कोई दिल बहलाने का सामान। अगर स्त्री नहीं तो प्रेम नहीं, प्रेम नहीं तो आनन्द नहीं, संसार में जो सुख हैं वे सारे सुख नारियों का ही प्रताप है। महर्षि जी के उपकार के कारण ही हमें आज यह विशेष अधिकार प्राप्त हुआ है। स्वामी जी के नेतृत्व में तत्कालीन समाज में प्रचलित बाल विवाह, पर्दाप्रथा, सतीप्रथा जैसी कुप्रथाओं का पूरे जोर के साथ विरोध किया गया। पुनर्विवाह का समर्थन किया गया। बहु विवाह का विरोध किया गया। नारी को सशक्त किया गया अच्छी शिक्षा देकर, सम्मान देकर, अधिकार देकर। स्कूल शिक्षा केन्द्र खोलकर, कन्या विद्यालय खोलकर, नारी निकेतन, विधवा आश्रम खोलकर, कुटीर उद्योगों की स्थापना करके, और विशेष ट्रेनिंग आदि की सुविधायें उपलब्ध कराके।

स्वामी जी इस बात से भलिभांति परिचित थे कि नारी सशक्तिकरण जैसा बड़ा लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब नारी शिक्षित होगी। जब शिक्षित होगी उसमें आत्मविश्वास होगा। नई सोच होगी, निर्णय लेने की शक्ति होगी और समाज अग्रसर होगा क्योंकि नारी पुरुष की परिपूरक है। नारी एक संसार है, विश्व है, समुद्र की गहराई है। इस प्रकार आर्य समाज के प्रयासों का ही परिणाम था कि महिलाओं ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में एक अहम भूमिका निभाई। हर राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया, जेल गईं, लाठियाँ खाईं और समूचे विश्व को दिखा दिया कि यदि उन्हें अवसर मिले तो वे चूल्हे–चौके से हटकर, घूँघट से बाहर निकल कर अपने दायरे में रहकर हर नामुमकिन काम को मुमकिन कर सकती हैं क्योंकि वह शक्ति है, जगदम्बा और वही कुलदेवी है। महिलाओं की इस सहभागिता का ही सुखद परिणाम था कि भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् सन 1950 में लागू हुए भारतीय संविधान में उन्हें पुरुषों की बराबरी का अधिकार मिला। संविधान द्वारा रंग, रूप, धर्म, लिंग, जाति, शिक्षा के अधिकार पर किये गये भेद को दण्डनीय माना गया। आधुनिक समाज में आर्य समाज का योगदान सर्व विख्यात है। उसके द्वारा की गई डी.ए.वी. स्थापना एक उपलब्धि है।

आर्य समाज ने केवल स्त्री शिक्षा पर नहीं बल्कि समूचे शिक्षा तंत्र के विस्तार को बढ़ाया। भारतवर्ष में डी.ए.वी. आज सबसे बड़ी गैर सरकारी शिक्षण संस्थान है। आज भी आर्य समाज तथा उससे जुड़े संस्थानों द्वारा स्त्री शिक्षा एवं सशक्तिकरण को बढ़ावा देने हेतु कार्य हो रहे हैं। आज महिलाओं को रोजगार के बेहतर अवसर प्रदान करने के लिये अत्याधुनिक तकनीकों से अवगत कराया जा रहा है। शहरी क्षेत्रों के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्त्रियों को समान दर्जा दिलाने हेतु सिलाई–कढ़ाई की मशीनें बाँटी जा रही हैं ताकि वे भी अपने बच्चों को उचित शिक्षा प्रदान कर सकें, उन्हें सक्षम बना सकें तथा उनका उचित पालन पोषण कर सकें। हाल ही में महात्मा आनन्द स्वामी जी के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में महिलाओं के पुनरुद्धार की क्रिया आज भी कायम है। विधवा पुनर्विवाह द्वारा उन्हें सामान्य जीवन जीने का अधिकार प्रदान किया जा रहा है। "बाल विवाह प्रथा" को अब पूरी तरह से रोका जा चुका है। गरीब स्त्रियों को जीवन यापन हेतु आर्थिक सहायता दी जा रही है। इसी के अन्तर्गत गरीब परिवारों के लिए सामूहिक विवाह केन्द्र खोले गये हैं।

आज भी आर्य समाज स्वतन्त्रता से पूर्व स्वामी जी द्वारा निर्धारित लक्ष्य नारी शिक्षा एवं नारी सशक्तिकरण के क्षेत्र में अपना पूरा सहयोग दे रहा है। उनके ही प्रयासों का परिणाम है कि आज कल्पना चावला, सायना नेहवाल जैसी प्रसिद्ध महिलायें अपने क्षेत्र में एक ऊँचाई तक पहुँच चुकी हैं। आशा भोंसले एक लेडी सिंगर हैं। सानिया मिर्जा (टेनिस), कामिनी कौशल, रिम्पी कुमारी इत्यादि। अब चाहे कला का क्षेत्र हो या रक्षा या विज्ञान का, राजनीति हो या खेल हो, विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक गतिविधियों में अर्थात् हर क्षेत्र में स्त्रियों ने अपना परचम लहरा दिया है। यह सब आर्यसमाज की देन है। मैं स्वामी जी की आभारी हूँ और हमेशा आभारी रहूँगी। उन्हें हृदय से नमन करती हूँ और करती रहूँगी। कथनी को विराम देना चाहूँगी। नारी निन्दा मत करो, नारी नर की शान। नारी से नर होत है, ध्रुव प्रह्लाद समान।।

डी.ए.वी पब्लिक स्कूल
आर.के. पुरम, दिल्ली

हिंसा-अहिंसा का विश्लेषण

● भद्रसेन

जीवन को सुन्दर, विकसित, आनन्दित बनाने वाले धर्म के धृति, क्षमा आदि अंगों को ही योगदर्शन में यम-नियम के नाम से स्मरण किया है। **तदर्थं यमनियमाभ्यामात्म संस्कारो योगच्चाध्यात्म विध्युपायैः न्याय.** 4,29=यम-नियमों और योगप्रक्रिया को अपनाने से आत्मबल बढ़ता है। **यमों अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापिरग्रहाः -यमाः योग.** 2,30 अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का सम्बन्ध सामाजिक व्यवहार से है। क्योंकि हिंसा-अहिंसा, सत्य-असत्य आदि का व्यवहार दूसरों के साथ किया जाता है। जबकिनियमों **शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः यो.**2,31अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान का सम्बन्ध/व्यवहार विशेष रूप से व्यक्तिगत (अपने आपे के साथ/अपने तक) अधिक है। अतः ये वैयक्तिक व्यवहार हैं और निजी प्रगति से अधिकतर सम्बन्ध रखते हैं। नियमों के पालने या न पालने का दूसरों पर कम प्रभाव होता है। हां, यमों के पालने और न करने का समाज की व्यवस्था तथा अव्यवस्था पर सीधा प्रभाव होता है। अतएव मनुस्मृतिकार ने नियमों की अपेक्षा यमों को विशेष महत्त्व दिया है। **यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान्कवलान् भजन्।।** मनु. 4,204 यह तो स्पष्ट है, कि नियमों के पालन से यमों के आचरण में प्रवीणता, सरलता रहती है। यम-नियम दोनों में यम अंश है, जो संयम की तरह यमन=नियमन=नियन्त्रण=अनुशासन, व्यवस्था की ओर ध्यान आकर्षित करता है। अर्थात् दिनचर्या तथा जीवनचर्या को मर्यादित बनाना।

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।

हिंसा-अहिंसा एक दूसरे से विपरीत अर्थ वाले शब्द हैं।हिंसा-हन् धातु से बनता है, (हन् हिंसागत्योः) जो मारने अर्थ में अधिक प्रसिद्ध है। बोलचाल में हिंसा शब्द पर्याप्त प्रचलित है। जो कि किसी प्रकार से कष्ट, कलेश, दुख, बाधा पहुंचाने और मार-पीट के अर्थ में लिया जाता है। वैसे मारना शब्द भी अनेक भावों को अभिव्यक्त करता है। अतः हिंसा शब्द शरीर-वाणी-मन से किसी का बुरा सोचने, करने, हानि पहुंचाने, कष्ट-क्लेश-दुख देने आदि के अर्थ में प्रचलित है। हिंसा का विपरीत अहिंसा (न+हिंसा) है। इसलिए पूर्व कहे को न करना ही अहिंसा है अर्थात् पहले से विपरीत का नाम अहिंसा है। अतः अहिंसा का अर्थ हुआ दूसरों का हित करना, दूसरों से स्नेह करना। कम उदारता की स्थिति में कम से कम अहिंसा का यह अर्थ हर एक अपना सकता है-'भला किसी का कर न सको, तो बुरा किसी का मत करना।'

स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी भी ढंग से किसी को किसी प्रकार का कष्ट न देना ही अहिंसा है। व्यावहारिक दृष्टि से अहिंसा का पूर्णतः पालन सर्वथा कठिन है। अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा समाज के हित के लिए न्याय, कृषि, सफाई, सुरक्षा आदि में हिंसा अनिवार्य है। अतः सामान्य रूप से यही कहा जा सकता है, कि निरर्थक किसी को कष्ट देना ही हिंसा है।

हिंसा-अहिंसा की बात कहने में जितनी सरल है, पर व्यवहार में उतनी ही कठिन है। आज के जीवन में अनेक ऐसी स्थितियां हैं जिन में हिंसा से पूर्णतः बचना कठिन होता है। केवल औषधियां ही नहीं, अन्य भी अनेक व्यवहार की वस्तुएं हैं जो स्पष्ट रूप से पशु-आदि की हिंसा से ही प्राप्त होती हैं। भोज्य पदार्थों में शाकाहार जैसे सर्वसुलभ विकल्प हैं, इस से हिंसाजन्य पदार्थों को व्यवहार में लाने से बचा जा सकता है। जिन के विकल्प के रूप में दूसरी अहिंसाजन्य चीजें मिलती हैं जैसे कि चमड़े के स्थान पर प्लास्टिक, फोम आदि के जूते, बैग, अटैची, दस्ताने आदि मिल जाते हैं। हां, कृषि, न्याय, सुरक्षा, सफाई आदि की दृष्टि से कार्य करने पर भी हिंसा होती है और समाज के हित की दृष्टि से ऐसी हिंसा निन्दनीय, त्याज्य, हानिकारक नहीं है, क्योंकि इन के बिना मानव समाज का कार्य चल नहीं सकता। खेती के बिना भूख से भी फिर हजारों, लाखों मरेंगे। आज समाज के हित की दृष्टि से ऐसे कार्य हिंसायुक्त होने पर भी अनिवार्य हैं। अतः इस प्रकार की अनिवार्य हिंसा को शास्त्रों में अहिंसा ही माना है। क्योंकि वेदादि शास्त्रों में जहां अहिंसा का विस्तृत विधान मिलता है, वहां हिंसा का भी प्रतिपादन है। कृषि, न्याय, सुरक्षा, सफाई, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में होने वाली अनिवार्य हिंसा को ध्यान में रखकर ही सम्भवतः प्रारम्भ में यह वाक्य प्रचलित हुआ होगा, कि **'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।** ऐसी स्थिति में-अहिंसा-लक्षणो धर्मः चाणक्यसूत्र-56 और अहिंसापूर्वको धर्मो यस्मात्सद्भिरुदाहृतः पंचतन्त्र (104,पृ.54,तन्त्र-3) जैसे शास्त्रीय वचनों का उदारतापूर्वक विवेचन करना चाहिए।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' वाक्य का अधिकतर यज्ञ की बलि के प्रसंग में प्रयोग किया जाता है। पर इस का सही अर्थ यह भी हो सकता है, कि वेद आदि शास्त्रों में कृषि, न्याय, सुरक्षा, सफाई आदि की दृष्टि से जिस हिंसा का विधान किया गया है उस को हिंसा के रूप में नहीं समझना चाहिए। यह भाव मनुस्मृति में अनेकत्र प्रकट किया गया है।

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान् द्विजः। नावेदविहितां हिंसामापदि समाचरेनत्।। 5,43

अपने आत्मा का कल्याण चाहने वाला द्विज घर में, गुरु के यहां या जंगल में रहते हुए भी ऐसी हिंसा कभी भी न करे, जिस का वेद में विधान नहीं है। या वेद विहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे। अहिंसामेव तां विघाद् वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ।।5,44 इस चराचर से भरे संसार में वेद ने जिस हिंसा का विधान किया है, (वह वस्तुतः अहिंसा ही है, क्योंकि वेद ही से धर्म = करने योग्य और न करने योग्य, उचित-अनुचित) का बोध होता है। हिंसा चैवा विधानतः 12,7 अर्थात वही हिंसा है, जिस का विधान नहीं है।

निःसन्देह मनुस्मृति के ये उद्धृत श्लोक यज्ञ में पशुबलि आदि के प्रसंग में हैं। पशुबलि पर आगे विशेष पर आगे विशेष विचार किया जाएगा। प्रकरण के तुलनात्मक विचार से यही स्पष्ट होता है, कि समाज के हित की दृष्टि से अपेक्षित हिंसा उपेक्षणीय है, क्योंकि उस के बिना वह आवश्यक कार्य नहीं हो सकता।

एलोपैथी की तो बात ही क्या? आयुर्वेद में भी अनेक औषधियों में मांस आदि के प्रयोग का स्पष्ट संकेत मिलता है। इस के साथ यह बात बिल्कुल स्पष्ट है, कि संसार में दोनों प्रकार की विचारधारा के लोग सदा से रहे हैं। औषधियों में ऐसी औषधियां भी हैं, जिन में मांस आदि का प्रयोग नहीं होता। अतः यह कोई ऐसी स्थिति नहीं है, जिस के बिना कार्य न चले।

शाकाहार और मांसाहार पर तुलनात्मक विचार करने से यह स्पष्ट होता है, कि मनुष्य के शरीर की रचना जहां शाकाहारियों के अनुकूल है, वहां मनुष्य शरीर, प्रकृति और उस की प्रवृत्तियां शाकाहारियों से अधिक मेल खाती हैं। बिना क्रूर हिंसा के मांस की प्राप्ति नहीं होती **नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्। न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।। मनु. 5,48 समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्। प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्।**।5,49 तथा मांसभक्षण से मनुष्य की प्रकृति और प्रवृत्ति भी हिंसक, क्रूर हो जाती है जो कि विचारशील मानव और अध्यात्म की दृष्टि से सर्वथा प्रतिकूल है। मांसभक्षण से अनेक रोग बड़ी जल्दी होते हैं। **न भक्षयति यो मांस---।--- श्च न पीडचते।। यनु. 5,50**
गौ आदि पशु जीवित रहते हुए जितना अधिक लाभ देते हैं, उस का दशांश भी उन को मार कर प्राप्त नहीं किया जा सकता। महर्षि दयानन्द ने 'गोकरुणानिधि' में इस का बड़ा सुन्दर विवेचन दर्शाया है।

निःसन्देह फलों, फसलों में जीवन मानने पर उन के खाने में भी मांस प्राप्ति की तरह वैसी ही जीवहत्या होती है और वह हिंसा कही जा सकती है। हां, यह ठीक है, कि पशुहिंसा जैसी क्रूरता-फल, फसलों की प्राप्ति में नहीं होती और न ही मांसभक्षण जैसी क्रूर वृत्ति और बीमारियां शाकाहार से होती हैं। यह सत्य है, कि मांसाहार और शाकाहार के सम्बन्ध में युक्ति और बुद्धि से मन को पूर्ण सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता केवल भक्षण का परिणाम ही विशेष रूप से निर्णायक हो सकता है। इस के साथ हमारे धर्मशास्त्र विशेष रूप से शाकाहार का ही समर्थन करते हैं।'ओषधयों औषधि=अन्न पैदा किए गए हैं ओषधयः फलपाकान्ताः मनु. 1,46 और चरक 1,73 में भी इस का समर्थन है, कि फल पकने के साथ ही जिन का अन्त हो जाता है, वही औषधी है, यह लक्षण अन्नों पर ही घटता है। क्योंकि ये ही मनुष्य की शरीर रचना, प्रकृति, प्रवृत्ति के अनुकूल हैं तथा इनके खाने पर परिणाम प्रतिकूल रूप में सामने नहीं आता।

यज्ञ और पशुबलि-

अनेक धर्मशास्त्रों में यज्ञ और बलि की दृष्टि से पशु आदि की हिंसा की चर्चा मिलती है। वेद के मन्त्रों के अर्थ में निःसन्देह मतभेद मिलता है, पर ब्राह्मणग्रन्थों और यज्ञसाहित्य=(कल्प) में स्पष्ट रूप से पशुहिंसा की चर्चा मिलती है। तभी तो शास्त्रों की भावनाओं को सामने रख कर ही मनुस्मृतिकार ने अनेक स्थलों पर इस का वर्णन किया है। **यज्ञार्थ ब्राह्मणै र्वध्या प्रशस्ता मृगपक्षिणः। 5,22 यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येषो दैवो विधिः स्मृतः।3। यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयभुवा। यस्म भूत्यै सर्वस्य तस्मा घज्ञे वधोऽवधः।।-39**

ओषध्यो पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा। यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्यु त्सृतीः पुनः।।40।।
मधुपर्के च यज्ञे च पितृवतकर्मणि। अत्रेव पशवो हिंस्या-41

जहां इस प्रकार के विधान प्राप्त होते हैं, वहां इस के विरोधी विधान भी मनुस्मृति आदि में इन से भी अधिक मिलते हैं। ऐसे उद्धरण अगले टिप्प में देखें। ऐसे ही बाइबल, कुरान, पुराण आदि में भी बलि की चर्चा मिलती है।

इस सम्बन्ध में सब से पहली विचारणीय बात यह है, कि जब धर्म का मूल अभिप्राय-सब का भला है, तब धर्म का हिंसा से सम्बन्ध जचता नहीं। जहां तक यज्ञ, बलि की बात है, वह कर्मकाण्ड का ऐसा रूप है, जिस के न करने से कोई कार्य रुकता नहीं। अतः यह हिंसा किसी रूप में भी आवश्यक नहीं है। इसके साथ वेदादि शास्त्रों में यज्ञ में की यज्ञ में की जाने वाली हिसा का स्पष्ट निषेध मिलता है। तथा इसीलिए यज्ञ को अध्वर= हिंसा

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

ज्ञान के दीप जलाएं

आओ, ज्ञान के दीप जलाएं,
न खुद जलें, न औरों को जलाएं,
क्यों न जोत से जोत जलाएँ,
है पावन पर्व, जगें और जगाएं।
आओ, ज्ञान के दीप जलाएं,
हम सब मिलकर दीप जलाएं।।

वेदज्ञान की ज्योति लेकर,
जन–जन के कर में देकर,
सारा जग जगमग कर दें
हर हृदय समता से भर दें,
प्रभुवर! हम बढ़ें और बढ़ाएं।
आओ, ज्ञान के दीप जलाएं,
हम सब मिलकर दीप जलाएं।।

करें न ईर्ष्या–द्वेष हम,
सदा करें व्यवहार सम,
सबमें आए शक्ति, दमखम,
भेदभाव को नित दूर भगाएं।
आओ, ज्ञान के दीप जलाएं,
हम सब मिलकर दीप जलाएं।।

"वेद" का सन्देश सही है,
उन्नति का मूलमन्त्र यही है,
यही बात सत्पुरुषों ने भी कही है,
हम सब सीखें और सिखाएं।
आओ, ज्ञान के दीप जलाएं,
हम सब मिलकर दीप जलाएं।।

वेद प्रकाश शास्त्री
4–ई, कैलाश नगर
फाजिल्का (पंजाब)

माई भगवती जी विषयक तथ्य एवं अपेक्षित गवेषणा

अगस्त 2015 में आर्य मन्तव्यों के प्रसार हेतु सक्रिय लोगों ने फेसबुक पर आर्य समाज के ही एक सज्जन का कार्टून बनाकर उसके नीचे लिखा–"राजधानी दिल्ली के रिसर्च स्कॉलर का चमत्कार–माता भगवती विधवा साध्वी नहीं, लड़की थी।" जब इसको लेकर जिज्ञासा की गई तो कार्टून प्रसारक बन्धुओं ने बताया कि इस विषय में 'परोपकारी' पाक्षिक के अगस्त (प्रथम) 2015 के अंक में प्रकाशित प्रा. राजेन्द्र जी जिज्ञासु का लेख द्रष्टव्य है।

उपर्युक्त लेख में लिखा गया है–"एक से अधिक लोगों ने यह प्रश्न पूछा है कि आपने ऋषि जीवन में माई भगवती जी को माई लिखा है। हमने और भी लेखों में ऐसा ही पढ़ा है, परन्तु 'दयानन्द सन्देश' दिल्ली में किसी ने उसे 'लड़की' लिखा है। वह 'हरियाणा' ग्राम की थी परन्तु उस लेखक ने उसके ठिकाने का भी कुछ और ही नाम लिखा है। यथार्थ इतिहास क्या है? हमारी विनीत विनती तो यही है कि हमने जो कुछ भी लिखा है इतिहास की प्रामाणिक सामग्री के प्रमाण देकर लिखा है। 'प्रकाश' जैसे प्रतिष्ठित पत्र की फाइल देखकर समाचार का स्कैनिंग करवाकर दिया है। स्वामी श्रद्धानन्द जी उसे माई जी लिखते हैं। अब दिल्ली राजधानी का कोई रिसर्च स्कॉलर अपनी रिसर्च का चमत्कार दिखा दे तो उसकी मनोकामना को पूरा करने में हम क्यों बाधक बनें। माई जी विधवा साध्वी थीं। लड़की नहीं थीं।"

उपर्युक्त लेख पर विचार करने के लिए लेखक द्वारा सम्पादित एवं अनूदित श्री मास्टर लक्ष्मण जी रचित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्पूर्ण जीवनचरित्र' के दोनों भागों में उनके द्वारा दिए गए माता भगवती विषयक विवरण भी पढ़ें। इनसे तो यह स्पष्टतया ज्ञात नहीं होता है कि माता भगवती जी विधवा साध्वी थीं। लेखक ने स्वयं भी इस 'सम्पूर्ण जीवनचरित्र' में कहीं पर ऐसा विधान नहीं किया है कि वे विधवा साध्वी थीं। 'प्रकाश' पत्र की स्कैनिंग करवाकर दी गई सामग्री में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया कि वे विधवा थीं।

अतः फेसबुक पर कार्टून प्रसारित करने वाले आर्यबन्धुओं से पूछा गया कि–अभी–अभी फेसबुक पर आपने इस नवीन बात का संकेत दिया है कि माई भगवती विधवा साध्वी थीं। आपसे निवेदन है कि कृपया माई भगवती विषयक अपनी इस नई जानकारी के सन्दर्भ (स्रोत) विषयक जानकारी प्रदान करें कि जिससे सभी आर्यों को आगे प्रामाणिक लेखन करने में सहायता मिले। उन बन्धुओं से यह भी प्रश्न किया गया कि– क्या आप यह समझते हैं कि 'प्रकाश' पत्र की स्कैनिंग कर दी गई सामग्री में यह कहा गया है कि माई भगवती जी विधवा थीं ?

उन बन्धुओं ने उत्तर दिया कि–यह लेख 'परोपकारी' पत्रिका का ही है। आर्य मंतव्य ने नहीं लिखा है। लेखक ने रिफरेन्स दिया है। आपको उस पर शंका है तो आप उन्हें लिख सकते हैं। अस्तु।

माई भगवती जी विषयक तथ्य–

फिर हमने माई भगवती जी विषयक निम्नलिखित तथ्यों को संकलित कर प्रकाशित करना उचित समझा–

महर्षि दयानन्द के कई जीवनचरित्रों में माई भगवती के बारे में उल्लेख तो पाया जाता है, किन्तु अति संक्षेप में। पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक ने रामलाल कपूर ट्रस्ट से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ में माई भगवती के सम्बन्ध में अपनी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियां दी हैं और उन्होंने यह भी निश्चित किया है कि ऋषि की मुम्बई की अन्तिम यात्रा (1881–82 ई.) के समय माई भगवती की ऋषि से भेंट हुई थी। वह विधवा थी–इस बात का मीमांसक जी ने कोई उल्लेख नहीं किया है। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने भी ऋषि के जीवनचरित्र में माई भगवती के बारे में केवल 4–5 पंक्तियां ही लिखी हैं। उन्होंने लिखा है–"हरियाणा की एक महिला माई भगवती तरुणावस्था में ही वैराग्यवती हो गई थी।" वह विधवा थी–इस बात का देवेन्द्रनाथ जी ने भी कोई उल्लेख नहीं किया है। पण्डित लेखराम संग्रहीत ऋषि के जीवनचरित्र में माई भगवती का उल्लेख पढ़ने को नहीं मिलता है। मास्टर लक्ष्मण जी आर्योपदेशक रचित ऋषि के सम्पूर्ण जीवनचरित्र (जो अभी कुछ वर्ष पूर्व ही 2012–13 ई. में प्रकाशित हुआ है) में उसके अनुवादक व सम्पादक श्री प्रा. राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने माई भगवती के सम्बन्ध में 2–3 पृष्ठ का विवरण लिखा है, मगर वे विधवा थीं, इस बात का तो उसमें भी कोई उल्लेख नहीं है। 'परोपकारी' पत्रिका के अगस्त (द्वितीय) 2015 के अंक में श्री इन्द्रजित् देव जी का माई भगवती विषयक एक उत्तम लेख छपा है। उसमें भी वे विधवा थीं–इस बात का उल्लेख नहीं है।

ध्यातव्य है कि 1986 ई. में एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिका में प्रकाशित एक संशोधनात्मक लेख में एक प्रसिद्ध सम्भ्रान्त लेखिका ने 1902 ई. में प्रकाशित सामग्री के आधार पर यह लिखा था कि माई भगवती का बाल विवाह हुआ था। उस लेख में यह भी लिखा गया था कि 26वर्ष की भगवती ससुराल छोड़ अपने घर हरयाणा वापिस आ गई थीं। मगर उस लेख में यह नहीं लिखा गया था कि वे विधवा थीं।

प्रमाणों की अपेक्षा–

अतः विचारधीन लेख के आदरणीय लेखक से निवेदन है कि जिस बात का संकेत दिया गया है कि–माई भगवती जी विधवा थीं, इसके एक–दो ठोस प्रमाण उपलब्ध हैं तो कृपया अपनी अनुकूलता से सार्वजनिक करें कि जिससे सभी आर्यों को इस विषय में सही जानकारी मिल सके एवं आगे प्रामाणिक लेखन करने में सहायता प्राप्त हो।

'परोपकारी' के नवम्बर (प्रथम) 2015 अंक में श्री जिज्ञासु जी ने पुनः इस विषय को लेकर अनेक बातें लिखी हैं, मगर इन बातों से भी यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता है कि माई भगवती विधवा साध्वी थीं। लेखक ने ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के आरम्भिक काल के साहित्य में इस बात का प्रमाण होने की बात लिखी है। उस दिशा में प्रयास अपेक्षित है कि जिससे वास्तविक तथ्य की गवेषणा हो सके। इसी बात का प्रमाण जानने की जिज्ञासा को श्री जिज्ञासु जी ने 'परोपकारी' में प्रकाशित अपने लेख में मेरी "हठ" के रूप में व्यक्त किया और इसे "कहां लिखा है – की रट लगाना" लिखा।

8–17 टाउनशिप,
पो.–नर्मदानगर,
जि. भरुच (गुजरात)–392015

****

☞ पृष्ठ 06 का शेष

विद्यार्थी के विनाश के...

अथवा सिनेमा के लोगों को मिलकर इस अश्लीलता का विरोध करते हुए इसे दूर करने के लिए कहता है तो रटा रटाया उत्तर मिलता है कि हम इस सम्बंध में क्या कर सकते हैं, सरकार से भी यही उत्तर मिलता है। वह तो यहाँ तक कहते हैं कि जिन गीतों अथवा जिन दृश्यों को रोकने के लिए आप कह रहे हैं, उनके प्रदर्शन के लिए तो हमारे पास लोगों की मांग आती है और बार–बार आती है। जब इस प्रकार के अनुरोध बार–बार आते हैं तो जनता की इस मांग के सामने इन दृश्यों पर निगरानी रखने वाला आयोग जिसे सेंसर बोर्ड कहा जाता है, वह भी झुक जाता है तथा इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं करता। इस से स्पष्ट होता है कि न तो सरकार और न ही उसका यह कांट–छांट करने वाला यह सेंसर बोर्ड ही कुछ हिम्मत दिखाता है, जिसे बनाया तो गया है समाज के हित के लिए इन चित्रों की बुराइयों को हटाने के लिए किन्तु वह भी झुक जाता है। इसलिए आप हमारे पास न आकर जनता के पास जाइए और उसे समझाइये कि वह इस प्रकार के चित्रों को न देखे। जनता की रुचि को बदलने का आधिपत्य आप के पास है। आप जनता के पास जाकर उसकी रुचि को बदलने का यत्न करें।

जब हम इन अधिकारियों से कहते हैं कि जनता को सही मार्ग पर ले जाना, उसे अश्लीलता से बचाना एक प्रजातांत्रिक सरकार का महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्य को समझते हुए इन दृश्यों के प्रदर्शन को रोका जावे और जनता को सन्मार्ग पर लाने का कार्य किया जावे तो ....। यह सत्य है कि इन अश्लील दृश्यों और इन अश्लील गानों के कारण हमारे देश की जनता विशेष रूप से युवक और युवतियों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है तथा निरंतर हो रही है। इस बुराई के कारण हमारे युवक–युवतियों के आचार–विचार नष्ट हो रहे हैं, भ्रष्ट हो रहे हैं। उनका चरित्र भ्रष्ट हो रहा है। उनका व्यवहार भी गन्दा हो गया है। यहाँ तक कि जो वह सोचते हैं, उस सोच में भी ये भ्रष्ट दृश्य ही होते हैं।

जब जीवन का आचार, विचार, व्यवहार और सब कुछ ही भ्रष्ट हो गया है तो उनमें किसी प्रकार का अनुशासन होगा यह तो सोचा भी नहीं जा सकता। जब हम आज के विद्यार्थी की दिनचर्या और व्यवहार को देखते हैं तो हमें पता चलता है कि आज का विद्यार्थी अनुशासन के लिए कुछ भी सुनने को तैयार नहीं है। वह हर प्रकार से अनुशासनहीन हो गया है। उस में उद्दंडता दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही चली जा रही है। यह युवक जिसे देश के निर्माण, की नवनिर्माण की विधियां खोजनी थीं आज के सिनेमा में प्रदर्शित हो रहे ठगी, चोरी, बलात्कार, कत्ल आदि के दृश्यों को देखकर वह भी इस प्रकार के गंदे और बेहूदे कार्यों को करने लगा है। इन बेहूदे कार्यों में जो सबसे बड़ा कारण है नशा, वह इन चलचित्रों से नशे का भी आदी हो गया है। इस कारण देश अध:पतन की ओर जा रहा है।

हम उन सब समाज हितैषियों को एकत्र करें। हमारे जीवन में उत्तम गुण लाने के जो लोग अभिलाषी हैं, उन सब को मंच पर लायें और समाज में बुराई फैलाने वाले इन दृश्यों के विरोध में जोरदार आवाज उठाते हुए खड़े हो जाएं, इनसे जोरदार टक्कर लें तो निश्चय ही इन चलचित्रों के निर्माताओं, दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा देश के सेंसर बोर्ड को झुकना पड़ेगा और समाज की विशेष रूप युवक–युवतियों में बढ़ रही इस बुराई से दूर करने में सफलता मिलेगी और देश तथा समाज उन्नति के, निर्मात्क कार्यों के मार्ग पर चलेगा। इससे इन युवक–युवतियों को भी नया जीवन मिलेगा।

104–शिप्रा अपार्टमेंट्स,
कौशाम्बी–201010, गाजियाबाद।
मो. 9718528060

☞ पृष्ठ 09का शेष

हिंसा–अहिंसा का ...

रहित अध्वर इति यज्ञ नाम, ध्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिबेघः निरुक्त 1,3। कर्म कहा जाता है। संसार में दोनों प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। अतः यज्ञ की मूलभावना से बलि का कोई सम्बन्ध न होने पर भी कुछ व्यक्तियों ने अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए ऐसे विधानों को प्रचलित कर दिया है। यह अधिकतर तान्त्रिक प्रक्रिया के कारण ही यज्ञ से आकर जुड़ गया है, अन्यथा यज्ञ हिंसा के बिना बड़े सुन्दर ढंग से हो सकता है। अतः यज्ञ आदि धार्मिक कर्मकाण्ड के लिए हिंसा अनिवार्य नहीं है।

हाँ, अहिंसा का मूल भाव है–दूसरों से वैर न रखना, उन को हानि न पहुंचाना। **अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः योग** 2,37 अर्थात् अहिंसा की भावना में परिपक्व हो जाने पर उस के मन में दूसरों के प्रति वैर, विरोध नहीं रहता। महर्षि दयानन्द ने अनेकत्र (3,49,50) निर्वैर, वैरत्याग, वैर बुद्धि छोड़ के अर्थ अर्थात् स्नेह करना अर्थ अहिंसा का दर्शाया है।

**यो ऽ हिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते।। मनु. 5,45।।
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।।48।।
मां स भक्षयिता ऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्भ्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः।।55।।**

मांस शब्द का यही भाव है, कि जिस को आज मैं खा रहा हूँ, वह मुझे खाएगा।

182, शालीमार नगर,
होशियारपुर (पंजाब) –146001

डी.ए.वी. सैंटनरी पब्लिक स्कूल नाभा में "इमोशन" वार्षिकोत्सव का आयोजन

डी.ए.वी. सैंटनरी पब्लिक स्कूल नाभा में वार्षिक सांस्कृतिक एवम् पारितोषिक वितरण समारोह का आयोजन किया गया जिसका शीर्षक था 'इमोश्न्ज' समारोह में डी.ए.वी. प्रबन्धकर्त्री समिति के सलाहकार व विद्यालय के चेयरमैन श्री एच.आर. गंधार जी मुख्य अतिथि थे। समारोह से पूर्व प्रातः काल हवन यज्ञ किया गया। समारोह मुख्यातिथि श्री एच.आर. गान्धार के कर कमलों से ज्योति प्रज्ज्वलन हुआ।

इस अवसर पर विद्यालय द्वारा एक पत्रिका इम्प्रैशन का लोकार्पणभी किया गया। विद्यार्थियों ने मनमोहक अंदाज में रॉक एंड रॉल नृत्य प्रस्तुत किया। हिप्प हाप डांस की प्रस्तुत छात्रों ने लाजबाव ढ़ंग से की।

गुजराती नृत्य का प्रस्तुति देख कर तो दर्शक मंत्र मुग्ध हो गए। और भंगड़ा नृत्य की अद्भुत प्रस्तुति देखकर सारा पंडाल तालियों से गूंज उठा। खेलक्षेत्र के कुछ होनहार छात्रों को जिन्होंने विभिन्न खेल प्रतियोगिताओं में जीत हासिल करते हुए विद्यालय का नाम रोशन किया है। मुख्यातिथि द्वारा पदक देकर सम्मानित किया गया।

विद्यालय की प्रधानाचार्या श्री मंजुला सहगल जी ने विद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट देते हुए कहा कि डी.ए.वी. संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण विकास करते हुए उन्हें एक अच्छा नागरिक बनाना है। उसी उद्देश्य को पूरा करने में यह विद्यालय पूर्णरूपेण प्रयासरत है। मुख्यातिथि एच.आर. गंधार जी ने अपने संबोधन में कहा कि मुझे आज इस विद्यालय के इस इमोशन समारोह में सम्मिलित होकर गर्व अनुभव हो रहा है। उन्होंने कहा कि विश्व में अन्य देशों के लोग प्रसिद्ध इसलिए है क्योंकि उन्होंने अपने अंदर की छिपी प्रतिभा को पहचाना व मेहनत और लगन से प्रसिद्धि के शिखर को प्राप्त किया। हमें बच्चों की प्रतिभा को पहचान कर उसे और निखारना चाहिए जिससे छात्र छात्राएं जीवन में आगे बढ़कर अपना भविष्य संवारे।

मुख्य अतिथि में विद्यालय की प्रधानाचार्या अध्यापकों व छात्रों को बधाई दी। जिन्होंने परिश्रम व लग्न से बच्चों को प्रशिक्षण देते हुए कार्यक्रम का सफलता पूर्वक आयोजन करवाया।

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 10-11 \02 \2016
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39\57

डी.ए.वी.सी.सै. मॉडल स्कूल, अबोहर में स्वच्छता की शपथ ली गई

राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी जी की पुण्य तिथि के अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाण पत्र से विभूषित एल आर एस डी.ए.वी. सी सै. मॉडल स्कूल में विशेष प्रार्थना सभा का आयोजन किया गया। प्रातः कालीन प्रार्थना सभा में विद्यालय के समूह स्टाफ व विद्यार्थियों को प्राचार्या श्रीमती कुसुम खुंगर द्वारा बापू गाँधी की पुण्यतिथि के अवसर पर स्वच्छता अभियान के तहत प्रतिज्ञा ग्रहण करवाई गई। समूह स्टाफ व विद्यार्थियों द्वारा स्वच्छता को जीवन में अपनाने, अपने विद्यालय घर, आस, पास गली, मुहल्ला व नगर के साथ–साथ देश को स्वच्छ बनाने की प्रतिज्ञा ग्रहण की गई। प्राचार्या ने कहा कि बापु गाँधी जी के आदर्शों के साथ–साथ उनका ध्येय स्वच्छता को जीवन में अपनाना ही आज के दिन उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि है।

श्रीमती अल्का सतीजा द्वारा बापू गाँधी जी के जीवन पर प्रकाश डाला गया। ग्यारह बजे पूरे विद्यालय में दो मिंट का मौन रख कर बापू को श्रद्धांजली दी गई।

प्रार्थना सभा के अर्न्तगत ही गणतंत्र दिवस, पर स्थानीय स्टेडियम में बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ विषय पर प्रस्तुत कोरियोग्राफी के विद्यार्थियों व बैंड टीम के विद्यार्थियों को प्रशासन द्वारा दिए गए मैडल व प्रमाण पत्रों से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्रीमती आदर्श जैन, श्रीमती सुनीता सहगल, श्रीमती मंजू डोडा, श्रीमती अल्का सतीजा, रवि कुमार (कोच), राजेश भठेजा, श्रीमती पूनम जाखड़, श्रीमती नीरु गुलबद्धर विशेष रुप से उपस्थित थी।

डी.ए.वी. पाँवटा में वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिता का भव्य आयोजन हुआ

डी.ए.वी. सिरमौर पब्लिक स्कूल पाँवटा साहिब में वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिता का भव्य शुभारंभ हुआ। दो दिन तक चलने वाले इस आयोजन में उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि श्री दिनेश मोंगिया (अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट खिलाड़ी) थे।

इस कार्यक्रम में अंडर 12 एवं अंडर 14 के छात्र छात्रों की विभिन्न प्रकार की दौड़, रिले, रेस, हाई जम्प, लांग जम्प, एवं कक्षा नर्सरी से द्वितीय तक मनोरंजन प्रतिस्पर्धाएं हुई।

अपने उद्बोधन में श्री मोंगिया ने कहा कि वे भी डी. ए.वी. कॉलेज चण्डीगढ़ से शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं। डी.ए.वी. संस्था विश्व में सर्वोपरि संगठन है जो देश के भावी नागरिक बनाता है। डी.ए.वी. संगठन का एक अंग बनना प्रत्येक व्यक्ति के लिए गर्व का विषय है। श्री दिनेश मोंगिया एवं अन्य गणमान्य अतिथियों ने कार्यक्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

डा.बी.सी.जोसन (प्राचार्य डी. ए. वी. कॉलेज सैक्टर 10 चण्डीगढ़ एवं मैनेजर डी.ए.वी. स्कूल पाँवटा) ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। उनके साथ प्रोफेसर डा. कश्मीरी लाल भी उपस्थित थे। विशिष्ट अतिथि के रूप में सर्व श्री डा. मदन लाल खुराना, हर्ष गोयल, साधना लवानिया, मेघराज आर्य एवं शहर की जानी मानी हस्तियाँ मौजूद रहीं।

समापन समारोह पर डा. वी.पी.गुप्ता (सेवा निवृत्त आई.ए.एस.) मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। उसके साथ श्री मती शशि किरण गुप्ता (क्षेत्रीय निदेशक जोन 2, हिमाचल पदेश) मौजूद थी।

इस प्रतियोगिता में स्वामी विवेकानन्द सदन प्रथम स्थान पर,स्वामी दयानन्द सदन द्वितीय एवं स्वामी श्रद्धानन्द सदन तृतीय स्थान पर रहे।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में 'लावनी ' भांगड़ा तथा 'स्वच्छ भारत अभियान ' को दर्शाते हुए नुक्कड़ नाटक भरपूर सराहा।

निर्मल जुगल सेठी मुल्तान डी.ए.वी. ओल्ड राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली में हुआ वार्षिक पुरस्कार वितरण

डी.ए.वी. राजेन्द्र नगर में वार्षिक समारोह एवं पुरस्कार वितरण का आयोजन किया गया। समारोह में मुख्य अतिथि श्री जे. पी. शूर (निदेशक सहायता प्राप्त स्कूल व पी. एस–1) थे। उस अवसर पर कर्नल आर. बी. राय साहनी के अलावा विभिन्न विद्यालयों के प्रधानाचार्य एवं अनेकानेक पूर्व विद्यार्थी उपस्थित थे।

समारोह का आरम्भ वेद मंत्रोच्चारण से हुआ। पुरस्कार वितरण समारोह में वर्ष भर चले शैक्षिक तथा शिक्षेतर कार्यक्रमों में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान पाने वाले छात्रों को पुरस्कार दिया गया।

श्री जे. पी. शूर ने अपने संबोधन में कहा कि विद्यालय उनके आशानुरूप विकास कर रहा है, एवं इसके लिए विद्यालय परिवार साधुवाद का पात्र है। उन्होंने डी.ए.वी. कॉलेज मैनजमेंट कमेटी द्वारा इन विद्यालयों को दिये जाने वाली सहायता की भी चर्चा की एवं आने वाले दिनों में हर जरूरत को पूरा करने का अश्वासन देते हुए कहा कि अब सहायता प्राप्त स्कूल किसी से कम नहीं रहेंगे। उन्होंने विद्यालय के प्रधानाचार्य एवं अन्य सदस्यों को शुभकामनाएँ दी। कर्नल आर.बी. राय साहनी ने अपने सम्भाषण में शिक्षा के क्षेत्र में इस विद्यालय के योगदान की प्रशंसा की।

विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री नीरज कुमार सिंह ने श्री साहनी परिवार द्वारा विद्यालय को दिये गये योगदान के लिए धन्यवाद करते हुए बताया कि विद्यालय में हर वर्ष पुरस्कार वितरण समारोह कर्नल आर.

बी. राय साहनी परिवार के योगदान से होता है। अन्त में प्रधानाचार्य जी ने विश्वास दिलाया कि विद्यालय सफलता की ओर अग्रसर है और इसी प्रकार आगे भी सफलता के कीर्तिमान स्थापित करेगा। कार्यक्रम की सफलता पर सभी सहकर्मियों का हार्दिक धन्यवाद किया गया ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**